वर्ष 1 ▪ अंक 3 ▪ आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद, 5121 कलि. ▪ जुलाई-अगस्त-सितम्बर, 2019

₹100/-

सभ्यता-संवाद

इतिहासलेखन : स्रोत और सन्दर्भ

महाभारत की ऐतिहासिकता
स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती श्री करपात्रीजी महाराज
इतिहास का प्रयोजन
राजेन्द्र सिंह
इतिहास-दृष्टि : एक सभ्यतागत विमर्श
प्रो. ठाकुर प्रसाद वर्मा
तथ्यों की कसौटी पर भारतीय इतिहास
प्रो. रामेश्वरप्रसाद मिश्र 'पंकज'
भारतवर्ष की इतिहास-दृष्टि
गुंजन अग्रवाल
पुराणों की इतिहास-दृष्टि
डॉ. प्रवीण कुमार द्विवेदी
विज्ञान, इतिहास और अंधविश्वास
रवि शंकर
इतिहास-पुनर्लेखन : मिथकों से सच तक
व्यालोक पाठक
व्यक्तित्व : एक निर्भीक इतिहासविद् वैद्य गुरुदत्त
पुस्तक-समीक्षा : कोलोनियल म्यूज़ियम्स, एन इनर हिस्ट्री
एन.सी.ई.आर.टी.-समीक्षा : सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन-1

सभ्यता अध्ययन केंद्र
वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः

• सभ्यता अध्ययन केन्द्र की त्रैमासिक शोध-पत्रिका •

वयं राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहिताः

सभ्यता-संवाद

सभ्यता अध्ययन केन्द्र की त्रैमासिक शोध-पत्रिका

वर्ष 1] आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद, 5121 कलि. : जुलाई-अगस्त-सितम्बर, 2019 ई. [अंक 3

सम्पादक

रवि शंकर

•

कार्यकारी सम्पादक

गुंजन अग्रवाल

सभ्यता अध्ययन केन्द्र

नयी दिल्ली

सभ्यता-संवाद

वर्ष 1, अंक 3, आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद, 5121 कलि.
जुलाई-अगस्त-सितम्बर, 2019 ई.

मार्गदर्शक-मण्डल

डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय   श्री सुबोध कुमार   प्रो. रामेश्वर प्रसाद मिश्र 'पंकज'
प्रो. राजकुमार भाटिया   डॉ. आनन्द बर्धन

•

सम्पादकीय सलाहकार

आशुतोष भटनागर   ऋतेश पाठक   डॉ. विवेक भटनागर

•

सम्पादक

रवि शंकर

•

कार्यकारी सम्पादक

गुंजन अग्रवाल

•

सह सम्पादक

धीप्रज्ञ द्विवेदी   भानु कुमार   ममता रानी   स्वाती शाकम्भरी

•

प्रबन्ध सम्पादक

जगत मोहन   श्यामसुन्दर तिवारी

•

प्रचार-प्रसार प्रमुख

शुभ्रा सिंह (मो.: 09017831916)

•

सम्पादकीय कार्यालय

सभ्यता अध्ययन केन्द्र

बी 14, गली-नं. 13, वज़ीराबाद गाँव, दिल्ली-110084
दूरभाष : 9899588033, 9654669293; ई-मेल : sabhyatasamvad@gmail.com
फेसबुक : https://www.facebook.com/sabhyatasamvad/

'सभ्यता-संवाद' में प्रकाशित निबन्धों में प्रतिपादित विचारों और तथ्यों का उत्तरदायित्व निबन्ध-लेखकों का है और उनसे सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी प्रकार के विवादों का निपटारा दिल्ली/नयी दिल्ली-स्थित सक्षम अदालतों और मंचों के क्षेत्राधिकार के अधीन है।

प्रकाशक **सभ्यता अध्ययन केन्द्र** के लिए स्वामी **रवि शंकर** द्वारा बी-14, गली-नं. 13, वज़ीराबाद गाँव, दिल्ली-110084 से प्रकाशित एवं प्रिंट-वे, 182, एफआईई, पटपड़गंज, इंडस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली-110 092 से मुद्रित।

इस अंक में...

सम्पादकीय	*(iv)*
पाठकीयम्	*(vi)*
पुनर्पाठ	
• **महाभारत की ऐतिहासिकता** स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती श्री करपात्रीजी महाराज	1
विमर्श	
• **इतिहास का प्रयोजन** राजेन्द्र सिंह	8
• **इतिहास-दृष्टि : एक सभ्यतागत विमर्श** **प्रो. ठाकुर प्रसाद वर्मा**	12
• **तथ्यों की कसौटी पर भारतीय इतिहास** प्रो. रामेश्वरप्रसाद मिश्र 'पंकज'	27
• **भारतवर्ष की इतिहास-दृष्टि** गुंजन अग्रवाल	31
• **पुराणों की इतिहास-दृष्टि** डॉ. प्रवीण कुमार द्विवेदी	49
• **विज्ञान, इतिहास और अंधविश्वास** रवि शंकर	55
• **इतिहास-पुनर्लेखन : मिथकों से सच तक** व्यालोक पाठक	63
व्यक्तित्व	
• **एक निर्भीक इतिहासविद् वैद्य गुरुदत्त** सभ्यता संवाद प्रतिनिधि	70
पुस्तक-समीक्षा	
• **संग्रहालय और औपनिवेशक षड्यंत्र का सच** रवि शंकर	75
एन.सी.ई.आर.टी.-समीक्षा	
• **विभेद नहीं, एकात्मता से परिचय करायें** रवि शंकर	79
समाचार	85

सम्पादकीय

भारतीय स्त्रोतों पर निर्भर हो भारत का इतिहास

भारतीय इतिहासलेखन कैसे किया जाए और उसके स्त्रोत क्या हों, यह एक विवादास्पद मुद्दा है। भारत का अकादमिक जगत् भारत के लिखित स्त्रोतों को बहुत ही सीमित रूप में ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में स्वीकार करता है। इसके अनेक कारण बताए जाते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय इतिहास के प्रमुख स्त्रोत पुराणों के लिए कहा जाता है कि उनमें इतनी मिथ्या, अलौकिक और चमत्कारिक कथाएँ भरी पड़ी हैं कि उन्हें इतिहास मानना सम्भव ही नहीं है। हाथी के सिरवाला देवता, सूकर के रूपवाला देवता, कभी नहीं मरनेवाले प्राणी, पसीने से संतानोत्पत्ति, सूर्य को निगलना-जैसी कथाओं के कारण आज का अकादमिक जगत् पुराणों को अविश्वसनीय बताता है। प्रश्न उठता है कि क्या इस अकादमिक जगत् ने मेगास्थनीज और टसाइस के 'इण्डिका' का ठीक से अध्ययन किया है ? उसमें भी ऐसे असम्भव विवरण भरे पड़े हैं। यहाँ तक कि मार्कोपोलो के यात्रा-वृत्तांत में ऐसे असंभव विवरण मिलते हैं। फिर भी भारत का पूरा इतिहास 'इण्डिका' के आधार पर ही नियत किया जाता है। इसका सीधा अर्थ है कि यह केवल मनमर्ज़ी का विषय है कि हम किसे ऐतिहासिक वर्णन के रूप में स्वीकार करें और किसे काल्पनिक कथा कह दें।

अकादमिक जगत् के बाहर के विद्वानों ने पुराणों को इतिहास के रूप में स्वीकार किया। इन विद्वानों में भी दो धाराएँ मिलती हैं। पहली धारा वह मुख्य धारा है जो पुराणों के अक्षर-अक्षर को सत्य के रूप में स्वीकार करती है। उसके लिए सूर्य को निगलना और समुद्र को पी जाना जैसी घटनाएँ यथातथ्य रूप में सत्य हैं। ये उनके लिए भगवान् की लीलाएँ हैं और इसलिए सम्भव हैं। दूसरी धारा उन विद्वानों की है जो पुराणों की इन घटनाओं को आलंकारिक वर्णन मानकर उनका नवीन विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं और उसके आधार पर इतिहास की रचना करते हैं। उदाहरण के लिए नृसिंहावतार को वे समाज का कोई अतिबलशाली और चतुर व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसे कि समस्त प्रजाजन का विश्वास प्राप्त था। समुद्र मंथन की कथा को लगभग सभी लोगों ने समुद्ररूपी समाज में चले ज्ञान-विज्ञान के मंथन के रूप में वर्णन किया है जिसे अच्छी और बुरी– दोनों प्रकार की ताक़तों ने मिलकर किया था और उससे अनेक आविष्कार किए गए थे। भारत का शासकवर्ग और उनसे पहला अकादमिक जगत्– इनमें से किसी भी धारा के विद्वानों को कहीं कोई स्थान नहीं देता।

ऐसे में देश का सच्चा, सम्यक् और समग्र इतिहास, जोकि सभी धाराओं के विद्वानों को स्वीकार्य हो, लिखना, एक असम्भव कार्य ही जान पड़ता है। ग़ैर-अकादमिक जगत् के विद्वानों की भिन्न धाराओं में फिर भी संवाद किया जाना सम्भव होता है, परन्तु देश का अकादमिक जगत् अभी ग़ैर-अकादमिक जगत् के विद्वानों से संवाद करने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं है। यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। इस स्थिति को समाप्त करने के लिए पं. भगवद्दत्त ने तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ.

राजेंद्र प्रसाद जी से मिलकर एक प्रयास किया था। उन्होंने माननीय राष्ट्रपति से आग्रह किया था कि वह देश का इतिहास लिखने का प्रयास करनेवाली सभी धाराओं के विद्वानों का एक संयुक्त सम्मेलन बुलायें। प्राचीन काल से ही यह शासन का कार्य रहा है कि वह सभी विद्वानों का सम्मेलन आयोजित करे और उनके मंथन से प्राप्त निष्कर्षों को सामने रखे। दुर्भाग्य से पं. भगवद्दत्त का वह प्रयास सफल नहीं हो पाया। उसके बाद से देश में 'इतिहास काँग्रेस' के नाम पर अनेक इतिहास-सम्मेलन हुए, परन्तु किसी भी सम्मेलन में ग़ैर-अकादमिक जगत् के इतिहासलेखकों को आमन्त्रित ही नहीं किया गया। प्रयास तो यहाँ तक किए गए कि ग़ैर-अकादमिक जगत् तो दूर, अकादमिक जगत् की भी किसी विपरीत विचारधारा के इतिहासविदों को उनमें स्थान न दिया जाए।

भारत के इतिहास के साथ हुए इस खिलवाड़ का कारण भी एकदम स्पष्ट है। स्वाधीनता के बाद देश में उसी अंग्रेज़ी औपनिवेशिक व्यवस्थाओं और मानसिकता को और मज़बूत बनाने का प्रयास किया गया, जिसके लिए महात्मा गाँधी ने लिखा था कि अंग्रेज़ चाहे देश में रहें, परंतु अंग्रेज़ीयत चली जानी चाहिये। परन्तु उनके अनुयायियों ने उनके नाम पर देश को आंदोलित कर सत्ता तो प्राप्त की, परंतु उनके कहने के ठीक विपरीत काम किया। उन्होंने अंग्रेज़ों को तो भगा दिया, लेकिन अंग्रेज़ीयत पूरे देश में फैला दी। अंग्रेज़ी-अभिजात्यता का अहंकार और औपनिवेशिक मानसिकता का दासत्व– दोनों ही आज के अकादमिक जगत् में प्रचुर दिखता है। इस अहंकार और दासत्व से मुक्त हुए बिना देश का सच्चा इतिहास लिखा जाना सम्भव नहीं है।

भारतीय लिखित स्त्रोतों और पुराणों का आधार बनाकर इतिहास लिखे जाने की एक महती आवश्यकता आज देश के सामने है। इसमें एक आम राय भी बनाए जाने की आवश्यकता है कि किस प्रकार पुराणिक विवरणों को ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत किया जाए। एक विचार यह भी हो सकता है कि किसी कालक्रम के झंझट में पड़े बिना पूर्व की भाँति केवल प्रमुख व्यक्तित्वों और घटनाओं का ऐतिहासिक अध्ययन ही किया जाये। आख़िर हज़ारों-लाखों वर्षों से भारत यह काम करता आया है और उससे सभ्यता के शिखर को छूना सम्भव है। परन्तु यदि आज के तरीक़े के इतिहास को भी पुराणों से निकाला जाए, तो उसमें भी कोई बुराई नहीं है। इसके लिए केवल कुछेक मापदण्ड तय करने होंगे। उदाहरण के लिए हम 'वैदिक सम्पत्ति' में पं. रघुनन्दन शर्मा द्वारा दिए गए एक मापदण्ड को देख सकते हैं। पं. रघुनन्दन शर्मा लिखते हैं– 'वेदों, ब्राह्मणों और पुराणों के सूक्ष्म अवलोकन से ज्ञात होता है कि संस्कृत के समस्त साहित्य में इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाले असम्भव, सम्भवासम्भव और सम्भव– तीन प्रकार के वर्णन पाए जाते हैं जो तीन भागों में बँटे हैं। इनमें जितना भाग असम्भव वर्णन से सम्बद्ध है, वह वेद का है और किसी-न-किसी चामत्कारिक अथवा जातिवाचक पदार्थ से सम्बन्ध रखता है; किसी मनुष्य, नगर, नदी, और देश आदि व्यक्तिवाचक पदार्थ से नहीं। परंतु जितना भाग सम्भवासम्भव और सम्भव वर्णन से सम्बन्ध रखता है, वह पुराणों और ब्राह्मण-ग्रंथों में ही आता है, वेदों में नहीं।' रघुनन्दन शर्मा ने इसकी विस्तृत व्याख्या पुस्तक में की है, जिसे गम्भीरता से देखा जाना चाहिए। कुछ इस प्रकार से प्रयास किए जाएँ, तो सम्भव है कि भारतवर्ष का एक सच्चा इतिहास तैयार किया जा सके।

रविशंकर

(रवि शंकर)

पाठकीयम्

फोन एवं टेलीफैक्स / Telefax: 0562-2530683
वेबसाइट / Website : www.hindisansthan.org

केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल

KENDRIYA HINDI SHIKSHAN MANDAL

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
Ministry of Human Resource Development, Govt. of India
हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005 (भारत)
Hindi Sansthan Marg, Agra-282005 (India)

डॉ. कमल किशोर गोयनका
उपाध्यक्ष
Dr. Kamal Kishore Goyanka
Vice Chairman

फा.सं.: 12-28/2019-20/165 | दिनांक: 24.06.2019

श्री गुंजन अग्रवाल
कार्यकारी संपादक 'सभ्यता-संवाद'
सभ्यता अध्ययन केंद्र
डी-14/गली नं.-13
वजीराबाद गाँव
दिल्ली-110084

प्रिय श्री अग्रवाल,

'सभ्यता संवाद' अंक : 2 मिला, धन्यवाद।

मैं इस पत्रिका का स्वागत करता हूँ। 'सभ्यता-संवाद' भारतीय संस्कृति, कला, साहित्य आदि सभी के साथ संवाद है। सभ्यता को लेकर पत्रिका की हिंदी में बड़ी आवश्यकता थी और 'सभ्यता अध्ययन केंद्र' ने इसे समझा और पत्रिका शुरू की, इसके लिए आपका अभिनंदन। इस अंक में कई महत्त्वपूर्ण लेख हैं। लेख क्या हैं- शोध लेख हैं जो पश्चिमी इतिहास-ज्ञान को चुनौती देते हैं। श्री रवि शंकर के लेख इसी कोटि का है, मेरे विचार में यह पत्रिका इतिहासकारों, पुरातत्त्वविदों तथा प्रबुद्ध नागरिकों तक अवश्य ही पहुँचनी चाहिए जिससे भारतीय सभ्यता का इतिहास और उसकी उपलब्धियों को नये भारतीय संदर्भों में समझा जा सके और उसे पाठ्यक्रमों का हिस्सा बनाया जा सके। इस अंक से ही स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास को नये सिरे से लिखने की आवश्यकता है, क्योंकि अब नई नस्लों को पश्चिमी इतिहासकारों के भारत विरोधी षड्यंत्रों तथा भारतीय इतिहास की भारतीय दृष्टि से जानकारी मिलती रह सके।

शुभकामनाओं के साथ,

आपका

कमल किशोर गोयनका
24/6/19

(डॉ. कमल किशोर गोयनका)

उपाध्यक्ष कार्यालय : केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केंद्र, बी-26 ए, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, शहीद जीत सिंह मार्ग, नई दिल्ली-110016
फोन : 011-26537121, 26537123 टेलीफैक्स : 26537122 Email : khsvicechairmangoyanka@gmail.com
उपाध्यक्ष निवास : ए-98, अशोक विहार, फेज़ प्रथम, दिल्ली-110052 फोन : 27219351, 42475051 मोबा : 09811052469 Email : kkgoyanka@gm

पुनर्पाठ

महाभारत की ऐतिहासिकता*

स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती श्री करपात्रीजी महाराज**

कुछ पाश्चात्य विद्वानों और उनके अनुयायी कतिपय भारतीय विद्वान् भी महाभारत के पात्र– युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि को ऐतिहासिक पुरुष न मानकर काल्पनिक मानते हैं एवं महाभारत के युद्ध को प्रत्येक पुरुष के मन में उठनेवाली दैवीय-आसुरी वृत्तियों का युद्ध अथवा धर्म-अधर्म का युद्ध मानते हैं। इससे वे यह कहना चाहते हैं कि महाभारत कोई इतिहास नही है। किन्तु ऐसा मानने में उन लोगों के पास कोई प्रमाण नहीं है। हम आगे उन्हीं प्रमाणों का संलग्न करने जा रहे हैं जो उनकी ऐतिहासिकता के पोषक हैं।

प्रतिदिन प्रातः स्मरण में उन लोगों का स्मरण ही यह बतलाता है कि वे ऐतिहासिक हैं–

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन। पापं प्रणश्यति वकोदरकीर्तनेन॥
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन। माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः॥

यदि ये ऐतिहासिक न होते, तो इनके पश्चादभावी लेखक इनका स्मरण नहीं करते। जिन लेखकों ने स्मरण किया है, उनकी तालिका नीचे दी जा रही है।

महाराज युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ से ही माध कवि ने अपना शिशुपालवध काव्य लिखा है। संवत् 977 के इस ग्रन्थ के टीकाकार वल्लभदेव महाभारत ग्रन्थ को सवा लाख श्लोकों का मानते हैं। वे शिशुपालवध के 2.38 की टीका में लिखते हैं– **संपादलक्षं श्री महाभारतम्**। सवा लाख श्लोकोंवाला महाभारत वाणीविलास प्रेस, मद्रास-1 से भी छप चुका है।

संवत् 957 के राजशेखर भी अपनी काव्यमीमांसा (अध्याय तीन) में महाभारत को 'शतसाहस्रीसंहिता' कहते हैं।

विक्रम की आठवीं शताब्दी के आचार्य आनन्दवर्धन अपने ध्वन्यालोक में महाभारत के शान्तिपर्व के 152 अध्याय के 'गृध्रगोमायुसंवाद' का उल्लेख करते हैं। वे महाभारत के

---

* श्रीरामायण-महाभारत काल मीमांसा, सम्पादक एवं प्रकाशक श्री स्वामी सदानन्द सरस्वती (श्री वेदान्ती जी), धर्मसंघ प्रचार विभाग, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, पृ. 1-10.

** धर्मसम्राट् स्वामी करपात्रीजी महाराज (1907-1982) महान् स्वाधीनता सेनानी, धर्मप्रचारक, अनेक संस्थाओं के संस्थापक, धर्मशास्त्रों के अतुलनीय विद्वान्, अनेक विख्यात ग्रंथों के रचनाकार

आदिपर्व के पहले अध्याय को एवं हरिवंश को भी महाभारत का अंश मानते हैं–

ननु महाभारते यावानपि विवक्षाविषयः सोऽनुक्रमण्यां सर्व एवानुक्रान्तः... महाभारतावसाने हरिवंशवर्णनेन समाप्तिं विदधता तेनैव कविवेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृतः

–ध्वन्यालोक 4, उद्योतकारिका 5

संवत् 689 के वल्लभी-निवासी ऋग्वेदभाष्यकार आचार्य स्कन्दस्वामी अपने भाष्य में महाभारत के अनेक आख्यानों का निर्देश करते हैं– **भारते तु ऋषयः शापात् सरस्वती मोचयामासुरित्याख्यानम्** (ऋग्वेद, 1.112.9)। यह आख्यान शल्यपर्व के 44वें अध्याय में है।

सप्तम शताब्दी में विद्यमान आचार्य दण्डी कवि अपनी अवन्तिसुन्दरी में महाभारत एवम् उसके रचयिता महर्षि वेदव्यास का स्मरण करते हैं–

मर्त्ययत्नेषु चैतन्यं महाभारतविद्यया। अर्पयामास तत्पूर्वं यस्तस्मै मुनये नमः॥

–मंगलाचरण, श्लोक 3

दण्डी से पूर्वभावी बाण अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ कादम्बरी एवं हर्षचरित में महाभारत की कथाओं का अनेक प्रकार स्मरण करते हैं– **पार्थरथपताकेव वानराक्रान्ता, विराटनगरीव कीचकशतावृता** (पृ. 67), **भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम् पराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम्** (पृ. 107 तथा पृ. 108), **महाभारते शकुनिवधः** (पृ. 143), **आस्तीकतनुरिवानन्दितभुजंगलोका** (पृष्ठ 179), **महाभारत-पुराण-रामायणानुरागिणा** (पृ. 188), **महाभारते दुःशासनापराधाकर्णनम्** (पृ. 199), **महाभारत पुराणेतिहासरामायणेषु** (पृ. 263), **महाभारतमिवान्तगीताकर्णनानन्दितनरम्** (पृ. 314) इत्यादि

–कादम्बरी, पूर्वभागे, हरिदास कृत कालिकाता संस्करणे, शाके 1857

एवमेव एकाकी तपस्वी वनमृगैः सह संवर्धित....... समग्रमुद्यतमेकविंशतिकृत्वः कृत्तवंशमुत्खातवान् राजन्यकं रामः (षष्ठ उच्छवास, पृ. 291), **हिडिम्बामुखचुम्बनास्वादितमिव रिपुरुधिरामृतमपायि पवनात्मजेन** (षष्ठ उच्छवास, पृ. 292), **जामदग्न्येन च शाम्यन्मन्युशिखिशिखासज्ज्वरसुखायभानस्पर्शशीतलेषु क्षत्रियक्षतजमहाह्रदेषु अस्नायि** (षष्ठ उच्छवास, पृ. 292)

नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्॥ 4॥
किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिना।
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्॥ 10॥
कवीनामगलद्दर्पं नूनं वासवदत्तया।

शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥12॥
इति हर्षचरित उपोद्घाते।

प्रायः बाण के समकालिक जयादित्य और वामन द्रोणपर्वत. सूत्र में महाभारत के द्रोण का स्मरण करते हैं। **द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्** (पा.सू., 4.1.103) इतिसूत्रे **नैवात्र महाभारतद्रोणो गृह्यते** यह लिखा है। काशिकायां **ईदूद्वेद्विवचनं प्रगृह्यम्** (पा.सू., 1.1.11) सूत्र पर महाभारत, शान्तिपर्व का **मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम**। (177.12) श्लोक उद्धृत है।

इनसे भी प्राचीन मीमांसाशास्त्र व्याख्याता भट्टपाद कुमारिल अपने औत्पत्तिकसूत्र के वार्तिक में लिखते हैं– **प्रसिद्धौ हि तथा चाह पाराशर्योऽत्र वस्तुनि। इदं पुण्यमिदं पापमित्येत्तस्मिद् पदद्वये** अर्थात् धर्म और अधर्म– दोनों ही प्रसिद्ध हैं। यह बात पराशरपुत्र व्यास ने महाभारत में कही है।

इनके समकालीन बौद्ध-विद्वान् धर्मकीर्ति अपने प्रमाणवार्तिक में **भारतदिष्वपि इदानीन्सनानामशक्तावपि कस्यचित शक्तिसिद्धेः** (प्रमाणवार्तिक, पृ. 447-448) महाभारत का स्मरण कराता है।

इनसे पूर्ववर्ती वाक्यपदीयकार प्रथमकाण्ड, श्लोक 142 में **गौरिव प्रक्षरत्येका**– महाभारत का यह श्लोक इतिहास नाम से उद्धृत कर रहे हैं।

इससे प्राचीन कविकुलगुरु कालिदास, जिनके सम्बन्ध में दैनिक पत्र नवभारत टाइम्स 01 जुलाई, 1976 के अपने में लिखता है कि उज्जैन के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. वी.एस. वाकणकर ने बतलाया कि उज्जैन के प्राचीन भाग में गढ़कालिका के निकट मिली ईसापूर्व शताब्दी की मुहर से महाराज विक्रमादित्य के सही काल का पता लगता है। इस मुहर पर स्वस्तिक चिह्न के साथ ईसापूर्व प्रथम शताब्दी की ब्राह्मी-लिपि में उज्जैन के राजा कीर्ति का नाम खुदा हुआ है। विक्रम संवत् को पहले कीर्ति संवत् कहा जाता था। ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में पश्चिमी क्षत्रिय शासकों ने उज्जैन पर आक्रमण किया और युद्ध में उनकी हार होने के बाद विजयस्मृति के रूप में कीर्ति संवत् प्रारम्भ हुआ। वहीं एक मिट्टी की मूर्ति में शेर के दाँत गिनते हुए भरत की आकृति बनी है। यह मूर्ति ईसा बाद पहली शताब्दी की है। यह प्रसंग महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णन किया है। यह मुहर और मूर्ति प्रथम ऐतिहासिक प्रमाण है जिससे महाराज विक्रमादित्य तथा कालिदास का समय ईसापूर्व प्रथम शताब्दी और ईसा बाद प्रथम शताब्दी के बीच नियत करने में सहायता मिलती है।

अपने मेघदूत में भी कालिदास **क्षेत्रं क्षत्रप्रधानपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः**– क्षत्रिय के विनाश की सूचना देनेवाले कुरुक्षेत्र में जाना, इससे कौरव-पाण्डवों का युद्ध स्मरण कर रहे हैं।

संवत् 191 से संवत् 214 पर्यन्त महाराज सर्वनाथ का शासन था। उसका शिलालेख मिला है जिसमें 'एक लाख श्लोकोंवाला महाभारत पराशरसुत व्यास ने बनाया' लिखा हुआ है–

उक्तं च महाभारते– **शतसाहस्र्यां संहितायां परमर्षिणा पराशरसुतेन व्यासेन।**

अब ईसवी सन् से पहले के वचन संकलित किये जा रहे हैं। वासदत्ता में उद्धृत न्यायवार्तिककार उद्योतकर (4.1.21) गौतम सूत्र में महाभारत के वनपर्व का श्लोक उद्धृत करते हैं–

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं नरकमेव वा।

–वनपर्व, 30.28

अर्थात् यह जीव अज्ञानी है, अपने लिए सुख-दुःख सम्पादित करने में स्वयं असमर्थ है। ईश्वर की प्रेरणा से ही वह स्वर्ग और नरक में जाता है।

योगभाष्यकार पतञ्जलि अपने योगभाष्य में–

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान प्राज्ञोऽनुपश्यति॥

–योगसूत्र, 1.47

मीमांसाभाष्यकार शबरस्वामी ने अपने मीमांसाभाष्य (8.1.1) में आदिपर्व का यह श्लोक उद्धृत किया है–

विस्तीर्य हि महज्जालमृषिः संक्षिप्य चाब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम्॥

–आदिपर्व, 1.51

ऋषियों ने विस्तार और संक्षेप– दोनों प्रकार से वर्णन किया है; क्योंकि विद्वानों को दोनों की पद्धति प्रिय है। **एष चाख्यानसमयः** (निरुक्त, 7.7) की व्याख्या में दुर्गाचार्य लिखते हैं– **भारते आख्यानसमयः** अर्थात् महाभारत में यही सिद्धान्त (आख्यान की परिपाटी) स्वीकार किया गया है। (अर्थात् पुरुषरूपवाले देवता का सिद्धान्त माना गया है।) पृथिवी ने अपना भार हल्का करने के लिए स्त्रीरूप धारणकर ब्रह्मा से प्रार्थना की (महाभारत, आदिपर्व, 64)।

अग्नि ने ब्राह्मणरूप धारण कर वासुदेव (भगवान श्रीकृष्ण) और अर्जुन– दोनों से खाण्डव वन जलाने के लिए याचना की। (महाभारत, आदिपर्व, 224-225) पुरुषरूप से (आदिपर्व, 230) तथा अग्निरूप से (आदिपर्व, 227) खाण्डव वन को जलाया; इत्यादि स्थलों में मिलता है।

स्वयं महाभारत की पुष्पिका में **शतसाहस्र्यां संहितायाम्** (सौ हज़ारवाली संहिता में)– ऐसा लिखा है। ये सब महाभारत एक लाख श्लोक का है, इसमें प्रबल प्रमाण है।

मुसलमान इतिहास लेखक अल्-बीरूनी के अनुसार महाभारत 18 पर्वों का एक लाख श्लोकवाला ग्रन्थ है।

दण्डी ने **भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम्** से जिस बृहत्कथा का स्मरण किया तथा **प्राहुः** परोक्षभूत का रूप देकर उनसे बहुत पहले बृहत्कथा की स्थिति बतायी। दण्डी से पूर्वभावी भट्ट बाण ने भी कादम्बरी के प्रस्तावनामय मंगलाचरण में अतिद्वयी कथा लिखकर (वासदत्ता और बृहत्कथा) दो कथाओं की ओर संकेत किया है। उस बृहत्कथा के लेखक गुणाढ्य के समय में महाभारत विद्यमान था। उसमें से उन्होंने रुरुमुनि कथा, सुन्दोपसुन्द कथा, कुन्ती-दुर्वासा कथा, पाण्डु द्वारा मुनि-वध कथा इत्यादि, महाभारत से ली। इसीलिये बृहत्कथा के अनुवादस्वरूप कथासरित्सागर में क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामञ्जरी में भी रुरुमुनि कथा 14.75 में है, जो महाभारत के आदिपर्व के आठवें अध्याय की है। सुन्दोपसुन्द कथा 15.135 में है जो आदिपर्व के 201वें अध्याय में है। कुन्ती-दुर्वासा कथा 16.36 में है जो आदिपर्व 113.32 में है। पाण्डु मुनिवध कथा 21.20 में है जो आदिपर्व के अध्याय 108 में है। शकुन्तला की कथा 32.108 में है जो आदिपर्व के अध्याय 62 में है।

महाभारत में ही महाभारत का रचनाकाल देखें, तो अन्तरंग परीक्षा से पता चलता है—

त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान्।
उत्पाद्य धृतराष्ट्रम् च पाण्डुं विदुरमेव च॥
जगाम तपसे धीमान पुनरेवाश्रमं प्रति।
तेषु तातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम्॥
अब्रवीद भारतं लोके मानुषेस्तिन महानृषिः।
जनमेजयेन पृष्टः सन ब्राह्मणेश्च सहस्त्रशः॥
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके।
स सदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम्॥

—महाभारत, आदिपर्व

अर्थात् महषि व्यास तीन अग्नियों के समान तेजस्वी कुरुवंशी धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर को उत्पन्नकर तप करने वन में स्थित अपने आश्रम में चले गये। उनके उत्पन्न होने, बढ़ने और परम गति को प्राप्त होने के अनन्तर महर्षि व्यास ने मनुष्यलोक में महाभारत का निरूपण किया। हज़ारों ब्राह्मणों के साथ जनमेजय के प्रश्न करने पर अपने शिष्य वैशम्पायन को महाभारत सुनाने की आज्ञा दी। वैशम्पायन यज्ञ के सदस्यों के साथ आसीन होकर यज्ञ के मध्य-मध्य के विराम में उनसे प्रेरित होकर महाभारत सुनाया करते थे। इससे स्पष्ट है कि जनमेजय के सर्पयज्ञ समाप्ति के पूर्व और धृतराष्ट्र, पाण्डु एवं विदुर के देहावसान के अनन्तर महाभारत संहिता की रचना हुई।

यद्यपि पाण्डु का निधन पहले ही हो चुका था, तथापि धृतराष्ट्र को युद्ध के बाद बीसवें वर्ष में परम पद प्राप्त हुआ। 15 वर्ष तक तो धृतराष्ट्र युधिष्ठिर के साथ ही रहे। सोलहवें वर्ष में भीम के वाग्बाण से निर्विण्ण होकर विदुर के साथ वन चले गये—

ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः।
राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीड़ितः॥

—महाभारत, आश्रमवासिकपर्व, 2.12

वहाँ धर्माचरण करते हुए एक वर्ष बीतने पर देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर से कहा था कि धृतराष्ट्र के जीवन अभी तीन वर्ष शेष हैं—

तत्राहमिदमश्रौषं शक्रस्य वदतः स्वयम्।
वर्षाणि त्रीणि शिष्टानि राज्ञोऽस्य परमायुषः॥

—वही, आश्रमवासिकपर्व, 20.32

महाभारत का युद्ध कलि और द्वापर की सन्धि में हुआ—

अन्तरे समनुप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥

—वही, आदिपर्व, 2.13

अर्थात् द्वापर और कलि के मध्य में कौरव-पाण्डवों का युद्ध हुआ।

महाभारत-युद्ध के 36 वर्ष बीतने पर परीक्षित का राज्याभिषेक हुआ। परीक्षित ने 60 वर्ष तक राज्य किया। महाभारत-युद्ध से 96 वर्ष पर बाल्यकाल में ही जनमेजय का राज्याभिषेक हुआ। वयस्क होने पर विवाह हुआ। विवाह के कुछ ही दिनों बाद उत्तंक की प्रेरणा से जनमेजय ने सर्पयज्ञ आरम्भ किया। उसी यज्ञ में वैशम्पायन से महाभारत सुना था। उसी महाभारत को महर्षि व्यास ने 'जय' नामक महाकाव्य कहा। यह 'जय' ही विविध उपाख्यानों के सहित लिखा हुआ भारतीय युद्ध का विशद् इतिहास है। महाराज युधिष्ठिर के विजय के उपलक्ष्य में लिखे जाने के कारण उनके समय में ही इसका लिखा जाना उचित है। तथा धृतराष्ट्र के समक्ष उनका पराभव लिखना उचित न होता, अतः महाराज धृतराष्ट्र को परमपद प्राप्त होने के अनन्तर महाभारत-युद्ध के बीस वर्ष बाद और 36वें वर्ष के पहले ही महाभारतसंहिता निर्माण का समय है—

अहं तु कीर्तिमेलेषां कुरूणां भरतर्षभ।
पाण्डवानां च सर्वेषां प्रथयिष्यामि मा शुचः॥

—वही, भीष्मपर्व, 2.13

इसका निष्कर्ष यह है कि महाभारत के ही प्रमाण-वचनों से सिद्ध होता है कि महाभारत युद्धकाल से बीस वर्ष बाद धृतराष्ट्र का परलोकवास हुआ था। धृतराष्ट्र के मरने के बाद और जनमेजय के सर्पसत्र के पूर्व महाभारत की रचना हुई है।

जनमेजय का अभिषेक कलि के 60 वर्ष अथवा 96 वर्ष बीतने पर हुआ। महाभारत आदिपर्व 49.17 और सौप्तिकपर्व 16.15 में लिखा है कि राजा परीक्षित ने 60 वर्षों तक राज्य किया और कलिगताब्द 36 के बाद उनका शासन आरम्भ हुआ। इसके अनुसार महाराज जनमेजय का अभिषेक-काल कलिगताब्द 96 वर्ष प्रमाणित होता है। आदिपर्व 49.26 के अनुसार 60 वर्ष की अवस्था में परीक्षित का देहान्त हुआ। परीक्षित का जन्मकाल और कलियुग का आरम्भ काल एक ही है। इसके अनुसार जनमेजय का अभिषेक कलिगताब्द 60 में ही

प्रमाणित होता है। जिन श्लोकों में 60 वर्षों तक शासन करने की बात कही गयी है, उनका अभिप्राय भी 60 वर्षों तक की व्यवस्था से ही समझना चाहिए। जनमेजय का राज्यभिषेक छोटी ही अवस्था में हुआ था। अतएव अभिषेक के 24 वर्ष बाद सर्प सत्र हुआ था। इससे यह भी प्रमाणित होता हो जाता है कि महाभारत की रचना कलिगताब्द 20 वर्ष के बाद और कलिगताब्द 84 वर्ष पूर्व हुई।

महाराज युधिष्ठिर कलिगताब्द 36 में भगवान् श्रीकृष्ण के परम धाम पधारने के पश्चात् दिवंगत हुए थे। यह महाभारतसंहिता युधिष्ठिर के विजयोपलक्ष्य में जयेतिहास के रूप में अनेक उपाख्यानों के साथ रची गई थी। अतः उसकी रचना युधिष्ठिर के राजत्व काल और भगवान कृष्ण के परम धाम पधारने से पहले हुई थी। यह स्वाभाविक बात है कि जिस राजा का विजय-इतिहास लिखा जाता है, वह प्रायः उसके शासनकाल में ही लिखा जाता है। अतएव कलिगताब्द 20 वर्ष बाद महाराज धृतराष्ट्र के स्वर्गवास के पश्चात् युधिष्ठिर के शासनकाल में ही कलिगताब्द 36 के पूर्व की महाभारत की रचना प्रमाणित होती है। महाभारत की रचना तीन वर्षों में पूर्ण हुई थी। श्री गणेश जी ने उसे लिखा था। इस प्रकार महाभारत का रचनाकाल विक्रम संवत् पूर्व 3024 और विक्रम संवत् पूर्व 3008 के मध्य एवं ईसवी सन् पूर्व 3081 और ईसा पूर्व 3065 के बीच में ही प्रमाणित होता है और महर्षि वैशम्पायन ने उसी महाभारत को कलियुगारम्भ से 84वें वर्ष विक्रम संवत् पूर्व 2960, ईसवी सन् पूर्व 3017 में महाराज जनमेजय को सर्पसत्र के अवसर पर सुनाया था। ज्योतिष-ग्रन्थों, पाश्चात्य परम्पराओं से यही संवत् चला है।

इसके अतिरिक्त कुछ शिलालेखों में भी इस कलि संवत् का उल्लेख है। इसका आरम्भ ईसवी सन् से 3102 वर्ष पूर्व माना जाता है। दक्षिण के चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी के समय एहोले की पहाड़ी पर अवस्थित जैन मन्दिर का शिलालेख भारत युद्ध से 3735 वर्ष बीतने पर और शक-राजाओं के 556 वर्ष बीतने पर बना है। वहाँ के श्लोक हैं–

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतीषु च।
समासु समतीतासु शकानामति भूभुजाम्॥

यह मन्दिर आज से 1342 वर्ष पहले बना है। 3735 में 1342 मिलाने पर 5077 वर्ष होता है। यही संवत् 2033 तथा शाके 1898 के पञ्चाङ्ग में गतकलि 5077 वर्ष लिखा है।

❖❖❖

विमर्श

इतिहास का प्रयोजन*

राजेन्द्र सिंह**

भारतवर्ष के प्राचीन साहित्यकारों के मतानुसार पूर्वघटित वृत्तान्त से युक्त उस कथा साहित्य को **इतिहास** कहते हैं जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेश से समन्वित हो—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्त कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥

—श्रीधरस्वामीकृत विष्णुपुराणटीका, 1.14; विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 3.15.1

यह इतिहास दो प्रकार का होता है— परक्रिया और पुराकल्प। जिस कथासाहित्य में एक ऐतिहासिक नायक हो वह **परक्रिया** और बहुनायक प्रधान कथासाहित्य **पुराकल्प** कहलाता है। उन दोनों के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण महर्षि वाल्मीकि कृत **रामायण** और महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास कृत **महाभारत** है।

परक्रिया पुराकल्प इतिहासगतिद्विधा। स्यादेकनायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका।
तत्र रामायणं भारत चोदाहरणे।

—काव्यमीमांसा, द्वितीय अध्याय

आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्यकृत कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र— ये सभी इतिहास के अन्तर्गत हैं—

पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणम् धर्मशास्त्रं अर्थशास्त्रं चेतीतिहासः

—कोटिलीयं अर्थशास्त्र, 1.5

इससे स्पष्ट है कि भारतीय मनीषियों की दृष्टि में इतिहास का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। उनकी दृष्टि में सूचीपत्रों को एकत्रित करना अथवा किन्हीं विशेष सूचनाओं को संकलित करना मात्र

---

* शाश्वत वाणी, अप्रैल, 1990 में प्रकाशित

** राजेन्द्र सिंह (1944-2016) भारतीय इतिहास, धर्म-दर्शन, आयुर्वेद, वेद-स्मृति-पुराण और कालगणना के जाने-माने विद्वान् थे। भारत के प्रामाणिक इतिहासलेखन के लिए उन्होंने बहुत प्रयास किया था। श्रीरामजन्मभूमि आन्दोलन के प्रमुख साक्षी और अनुवादक के रूप में इनको जाना जाता है।

इतिहास नहीं है। वस्तुतः इतिहास धर्म, अर्थ,काम और मोक्ष– इन चार पुरुषार्थों का संज्ञापक है।

मानव मननशील प्राणी है। मननशीलता और सम्यक् ज्ञान से समन्वित होने के कारण ही वह इतर प्राणियों से विलक्षण और श्रेष्ठ है, अन्यथा उसमें और इतर प्राणियों में कोई अन्तर नहीं। मननशीललता मानव को पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरित करती है। चारों पुरुषार्थ उसके जीवन को सार्थक बनाते हैं। अतः मानव के लिए चारों पुरुषार्थों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है।

धर्म : धर्म विश्वव्यापक तत्त्व है। परमात्मा की वह शक्ति जो इस विशाल ब्रह्माण्ड को सम्यक् रूप से धारण और पालन-पोषण करती है, वैदिक भाषा में उसको प्राण कहते हैं। परमात्मा से **प्राण** प्रकट होकर इस विश्व का विधिपूर्वक निर्माण करता है और प्रलयपर्यन्त इसको भली-भाँति धारण करता है–

आत्मन एषः प्राणो जायते। स प्राणमसृजत।

–प्रश्नोपनिषद् 3.3 तथा 6.4

धारण करने से इसको धर्म कहते हैं।

धारणाद् धर्ममित्याहु धर्मेण विधृताः प्रजाः

–महाभारत, शान्तिपर्व, 109.11

इस प्रकार इस चलायमान विश्व की प्रतिष्ठा धर्म है–

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठाः।

–महानारायणोपनिषद् 17.6

मानव के पुरुषार्थ से सम्बन्धित धर्म का मूलाधार भी **ईश्वरीय व्यापक धर्म** है। **सनातनस्यः धर्म इति सनातनधर्म**। परमात्मा सनातन है। उस सनातन का धर्म होने से इसे **सनातन-धर्म** कहते हैं। धारण करनेवाले मनुष्य को यह सनातन बना देता है, इस कारण से भी इसे सनातन-धर्म कहते हैं। यह स्वयं देश और काल की सीमा से ऊपर है, इसलिए भी यह सनातन कहलाता है।

अर्थ : अर्थ के अन्तर्गत केवल व्यापार ही निहित नहीं है अपितु पृथिवी का लाभ और पालन– दोनों का समन्वय होता है। पृथिवी से प्राप्त होनेवाले खाद्यान्न, वस्त्रप्राप्ति के मूल उपादान और मानवीय जीवन के लिए उपयोगी और आवश्यक वस्तुओं का विधिपूर्वक संग्रह, संरक्षण और परिवर्धन लाभ कहलाता है। पृथिवी को वायुप्रदूषण, अनावृष्टि, अतिवृष्टि और दुराचारी प्राणियों से बचाते हुए सद्वृत्तियों के प्रसार और प्रचार के लिए सुयोग्य बनाना **पालन** कहलाता है। व्यक्तिगत रूप से मानव के शरीर और समष्टिगत रूप से देश को स्वच्छ, निरोग और धर्मकार्यों के लिए उपयोगी बनाना अर्थ है अन्यथा अनर्थ है।

काम : काम के अन्तर्गत विविध कामनाएँ आती हैं। कामनाएँ दो प्रकार की होती हैं : उत्कृष्ट और निकृष्ट। उत्कृष्ट कामनाएँ मनुष्य को संसार का वास्तविक सुखदायक लाभ कराती हैं

और निकृष्ट कामनाएँ मनुष्य को अपने बलिष्ठ पाश में बाँधकर उसको मानवता से नीचे गिरा देती हैं। इसलिए निकृष्ट कामनाएँ अनुकरणीय न होकर त्याज्य होती हैं। उत्कृष्ट कामनाएँ दो प्रकार की होती हैं– एक **साधारण** जो संसार का सुखदायी लाभ तो अवश्य कराती हैं, परन्तु मनुष्य को संसार-चक्र नहीं देतीं। दूसरी **विशेष** जो कि मनुष्य के लिए मोक्षदायिनी बनती हैं।

मोक्ष : मोक्ष, संसार में आवागमन के चक्र से छूटकर परम पद की प्राप्ति को कहते हैं। केवलीभाव, निर्वाण-पद, कैवल्यभाव, परमगति, मुक्ति , ब्रह्मलय– ये सभी मोक्ष के पर्यायवाची हैं। यही मानवीय जीवन का परम लक्ष्य है। कई आचार्यों का मत है कि मोक्षप्राप्ति के लिए किसी प्रकार के कर्म करने की आवश्यकता नहीं है, अपितु केवल ज्ञान की आवयश्कता है। इसके विपरीत अन्य आचार्यों का कथन है कि मोक्षप्राप्ति में कर्म ही सफलीभूत होता है। इसके लिए ज्ञान की भला क्या आवश्कता है। किन्हीं विशेष प्रकार की दो-चार योगक्रियाओं की सहायता से शरीरगत कुण्डलिनी-शक्ति के जागरण से मुक्तिमार्ग खुल जाता है।

शास्त्र इन दोनों एकांगी मतों से सहमत नहीं है। अमितबुद्धि याज्ञवल्क्य के अनुसार ज्ञान और कर्म– दोनो के सहयोग से परम पुरुष की प्राप्ति होती है। दोनों के पृथक् रहने से मोक्षसिद्धि नहीं होती। इसलिए दोनों का आश्रय लेना चाहिए। ज्ञान प्रधान होना चाहिए परन्तु कर्महीन ज्ञान नहीं; **कर्म** प्रधान होना चाहिए परन्तु बुद्धिहीन कर्म नहीं। इसलिए दोनों के मेल से ही मोक्ष सिद्धि होती है। एक पक्ष वाला पक्षी नहीं उड़ा करता।

आधार और लक्ष्य की ध्रुवता :

चारों पुरुषार्थों में धर्म आधार है और मोक्ष लक्ष्य। आधार और लक्ष्य सदैव अपरिवर्तनशील होते हैं। आधारस्वरूप धर्म मनुष्य को उसके परम लक्ष्य की उपलब्धि कराता है। अर्थ और काम वे साधन हैं जिनके माध्यम से लक्ष्य की उपलब्धि सम्भव होती है। साधन देश और काल की सीमा में बँधे होने के कारण यथावसर परिवर्तनशील होते हैं। साधनों का यदि उचित मात्रा में उपयोग न किया जाय, तो वे विविध समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। इसलिए उन पर अंकुश लगाने की आवश्यकता होती है। **धर्म** अर्थ और काम नामक साधनों पर उचित अंकुश लगाता है।

जब मनुष्य धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करके **अर्थ और काम** का आवश्यकता से अधिक सेवन करने लगता है तो एक दिन उसका दास बनकर रह जाता है। फिर वह अपनी उच्छृंखल प्रकृति से समाज के सुख, समृद्धि और शान्ति को भंग करने लगता है। ऐसा स्वच्छन्द व्यक्ति यदि किसी उच्च पद पर आसीन हो जाय, तो समाज के लिए अत्यन्त दुःखदायी सिद्ध होता है।

इतिहास का प्रयोजन

इतिहास का प्रयोजन मनुष्य को ज्ञानवान् बनाना है। यह कार्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेश से समन्वित इतिहास द्वारा सुगमतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। चारों पुरुषार्थों के उपदेश से विभूषित इतिहास मनुष्य को दर्शाता है कि अतीत काल में अमुक मनुष्य, समुदाय अथवा राष्ट्र किन-किन अशुभ कर्मों के कारण पतित होकर अकीर्ति और अपयश का भागी बना,

इसके विपरीत एक दूसरा मनुष्य, समुदाय अथवा राष्ट्र अमुक-अमुक शुभ कर्मों के कारण उन्नत अवस्था में पहुँचकर कीर्ति और सुयश को प्राप्त हुआ। इतिहास मनुष्य को अतीत में की गई भूलों से बचने और धर्म के अविरुद्ध शुभ कर्मों को करने की प्रेरणा देता है।

इतिहास बतलाता है कि धर्म मानवसमाज का प्राण है। धर्म के पालन से जहाँ लोक में सुख, शान्ति, समृद्धि, कीर्ति और सुयश प्राप्त होते हैं, वहाँ ज्ञानपूर्वक निष्काम कर्म करने का आधार भी प्राप्त होता है। इसी कारण महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास ने **दुर्योधन रूपी अधर्ममय महावृक्ष** में और **युधिष्ठिर रूपी धर्ममय महावृक्ष** का उत्तरपक्ष में महाभारत में प्रस्तुत किया है। दुर्योधन ऐसा अधर्म वृक्ष है जिसका स्कन्ध कर्ण, शाखा शकुनि,समृद्ध पुष्पफल दुःशासन तथा जड़ अमनीषी धृतराष्ट्र है—

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोमनीषी।

—महाभारत, आदिपर्व, 1.110

इसके उत्तरपक्ष में युधिष्ठिर ऐसा धर्मवृक्ष है जिसका स्कन्ध अर्जुन, शाखा भीमसेन, समृद्ध पुष्पफल नकुल-सहदेव और जिसकी जड़ श्रीकृष्ण, वेद और ब्राह्मण (वेद=ब्रह्म को धारण करनेवाले) हैं—

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धौर्जुनो भीमसेनेस्य शाखाः।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च॥

—वही, आदिपर्व

इस प्रकार मनुष्य को इतिहास के अध्ययन से **पूर्वपक्षीय अधर्म** और **उत्तरपक्षीय धर्म** का सम्यक् ज्ञान होता है। इससे प्रेरित होकर मनुष्य अधर्म को त्यागने का मनोबल प्राप्त करके मोक्षबुद्धि प्रदान करनेवाले ग्रन्थों के स्वाध्याय में अग्रसर होता है। स्वाध्याय से योग में अभिरुचि जागती है। इससे वह विधिवत् योग का अभ्यास करने लगता है। योग से उसका स्वाध्याय परिपक्व होता है। फिर **स्वाध्याय और योग— दोनों की सम्पत्ति से** उसके हृदय में परमात्मा प्रकाशित होने लगता है—

स्वाध्यायद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमासते।
स्वाध्याययोसम्पया परमात्मा प्रकाशते।

—योगदर्शन, 1.28 पर व्यासभाष्य

स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्रांणा जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा।

—योगदर्शन, 1.2 पर व्यासभाष्य

अन्ततोगत्वा वह अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार मानव अपने जीवन को सार्थक बना लेता है।

❖❖❖

इतिहास-दृष्टि : एक सभ्यतागत विमर्श

प्रो. ठाकुर प्रसाद वर्मा*

भारतीय इतिहास के विविध पक्षों पर विचार करते हुए हम इस बात की समीक्षा करेंगे कि भारत के इतिहास के प्रति हमारी दृष्टि कैसी होनी चाहिए। सबसे पहले हमें इस 'हम' अथवा 'हमारी' की स्पष्ट परिभाषा कर लेनी चाहिए। श्रीअरविन्द ने इसे अत्यन्त सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है। अलीपुर बम प्रकरण में जेल से छूटने के बाद कलकत्ता के निकट उत्तरपाड़ा में हुए अपने स्वागत के उत्तर में उन्होंने कहा, ''मैं अब यह नहीं कहूँगा कि राष्ट्रीयत्व एक ध्येयवाद, एक धर्म अथवा एक जीवन-निष्ठा है, बल्कि यह कहता हूँ कि हमारे लिये सनातन-धर्म ही राष्ट्रीयत्व है। यह हिंदू राष्ट्र, सनातन-धर्म के साथ पैदा हुआ था, उसके साथ ही यह चलता है तथा उसके साथ ही यह वृद्धि को प्राप्त होता है। जब सनातन-धर्म का पतन होता है तब राष्ट्र का पतन होता है और यदि सनातन-धर्म विनाश को प्राप्त होने योग्य है, तब उस सनातन-धर्म के साथ यह भी नाश को प्राप्त होगा। सनातन-धर्म ही राष्ट्रीयत्व है। यही वह संदेश है, जिसे मैं आप को कहता हूँ।''

श्रीअरविन्द का यह सन्देश अविकल रूप से यह घोषणा करता है कि सनातन-धर्म ही राष्ट्रीयता एवं भारतीयता का पर्याय है। यही भारतीय राष्ट्रीयता की मुख्य धारा है, जिसमें शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन, बौद्ध, सिख आदि सभी शामिल हैं। सेमेटिक मतों के माननेवाले मुसलमान और ईसाई, भारतीय राष्ट्रीयता की सहधाराओं का निर्माण करते हैं। इनमें कतिपय राष्ट्रभक्तों को छोड़ दें, तो किसी को एक नये गजनवी की प्रतीक्षा है और अगली सहस्राब्दी में सारे एशिया पर अपनी आँख गड़ाए हुए है। इस आधारभूमि पर खड़े होकर जब हम देखते हैं, तो पाते हैं कि विगत दो शताब्दियों को पूर्व हम निश्चयपूर्वक यह मानते थे कि हमारे वेद, पुराण, रामायण महाभारत आदि में हमारी सांस्कृतिक परम्परा सुरक्षित है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता हैं। राम, कृष्ण आदि इतिहास-पुरुष हैं। किन्तु जबसे पाश्चात्य ढंग से इतिहास की रचना की जाने लगी, ये सभी तत्त्व मिथक की श्रेणी में डाल दिये गये। इतिहास तो भारत पर सिकन्दर के आक्रमण से प्रारम्भ

* पूर्व प्रोफसर एवम् अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार; सेवानिवृत्त उपाचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

होता है। इसके कुछ ही शताब्दियों पूर्व भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था, लेकिन इस तिथि को भी अधिक-से-अधिक नीचे लाने की चेष्टा की जा रही है। बुद्ध के काल के बाद इतिहास को तो पुराणों एवं बौद्ध-साहित्य के आधार पर पुनर्निर्मित किया जाता है, किन्तु उसे भारत के ऐतिहासिक कालक्रम में पूरी तरह स्वीकार नहीं किया जाता। भारतीय पुरातत्त्वज्ञ अपने उत्खननों से गुप्तकाल, कुषाणकाल, शुंगकाल एवं मौर्यकाल के स्तरों तक तो खोज पाता है, किन्तु उसके पूर्व के कालों को मृद्भाण्डों के स्तरों से पहचानता है न कि पुराणों एवं बौद्ध-साहित्य के आधार पर जाने जानेवाले राजवंशों के आधार पर। इस प्रकार इन मौर्य-पूर्व राजवंशों को पूरी मान्यता नहीं प्राप्त है। इसका कारण यह है कि गौरांग-गुरुओं ने जिसे नहीं माना, उसे हमारा पुरातत्त्वज्ञ अपने मन में स्थापित नहीं कर पाता है। ऐसा नहीं है कि पुरातत्त्व के क्षेत्र में काम नहीं हो रहा है। काम तो बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। नित्य नयी खोजें हो रहीं हैं तथा भारतभूमि पर भी मानव की पुरातनता बढ़ती जा रही है। प्रागैतिहास के क्षेत्र में अनेक विधाओं पर काम हो रहा है। पाश्चात्य पद्धति के अनुसार भारत में भी लौहयुग,ताम्रपाषाण युग तथा पाषाणयुग की कल्पना की गयी। पाषाणयुग में भी पुरापाषाण युग, उच्च, मध्य एवं निम्न, मध्य-पाषाण युग तथा नवपाषाण युग के काल-विभाजन के आधार पर अवशेष वर्गीकृत किए जाते हैं। लेकिन यह सारा पुनर्निर्माण यान्त्रिक लगता है। इसमें प्राण नहीं दिखाई पड़ता। मनुष्य की दो विशेषताएँ हैं– चिन्तन एवं बोलने की शक्ति। पुरातत्त्व के काल-वर्गीकरण एवं पुनर्निर्माण में इन दोनों की ही उपेक्षा की जाती है। इन विधाओं पर विचार करना वर्जित माना जाता है; क्योंकि उनके अनुसार यह कल्पनालोक का विषय बन जाता है। लेकिन भारतीय मान्यता यह है कि इन पर विचार किए बिना इतिहास बन ही नहीं सकता।

यूरोपीय प्रसार

पन्द्रहवीं शताब्दी ईसवी के अन्तिम चरण से यूरोपीय विस्तार का प्रारम्भ माना जाता है। श्रीराम साठे ने राजीव दीक्षित के सन्दर्भ से बताया है कि इस समय यूरोप में पुर्तगाल एवं स्पेन, अन्यों से अधिक शक्तिशाली थे। पुर्तगाल के वास्को-डि-गामा तथा स्पेन के कोलम्बस– दो समुद्री डाकू परस्पर भिड़ जाया करते थे। 1462 में पोप ने एक 'बुल' (आदेश) जारी कर पूर्व का क्षेत्र वास्को-डि-गामा को तथा पश्चिम का क्षेत्र कोलम्बस को बाँट दिया। इस प्रकार विश्व को दो भागों में बाँटकर लूट की इज़ाज़त पोप द्वारा दी गयी और ऐसे होता है, संसार में यूरोपियों द्वारा लूट एवं प्राचीन संस्कृतियों के विनाश का प्रारम्भ। इसे 'यूरोपीय प्रसार' (European Expansion) कहा गया। उन्होंने अमेरिका के दोनों महाद्वीप तथा ऑस्ट्रेलिया को अपना उपनिवेश बना लिया। अपनी हाल ही की भारत-यात्रा में पोप ने ईसाइयों के इसी विश्व-प्राधिकार की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने साधिकार यह सन्देश दिया कि ईसा की पहली सहस्राब्दी में सारे यूरोप को ईसाई बना लिया और दूसरी सहस्राब्दी में अमेरिकाओं तथा ऑस्ट्रेलिया को; अब तीसरी सहस्राब्दी में एशिया की बारी है। यह इतिहास का रोचक विषय है कि किस प्रकार एशिया में जन्मा यह ईसाई मत यूरोप (रोम) में 'हाईजैक' कर लिया गया और क्रमशः भौतिकतावाद की ओर बढ़ता चला गया। यूरोपीय प्रसार एवम् ईसाइयत साथ-साथ चलते हैं। दियास ने 1986 में दक्षिणी अफ्रीका के 'आशा अन्तरीप' (Cape of Good hope) की प्रदक्षिणा की। 1492 में कोलम्बस अमेरिका

पहुँचा और 1498 में वास्को-डि-गामा भारत आया और तीनों यात्राओं में क्रमशः सात, बारह और बाइस नावों में सोने के सिक्के और लूट का माल लेकर वापस गया। पुर्तगाली भारत में अपनी क्रूरता के लिये कुख्यात हैं। कोलम्बस के बाद सोलहवीं शताब्दी में स्पेन के ही बाल्बोवा ने पनामा पार करके प्रशान्त सागर के तट को छुआ। 1536 में पिंजारो दक्षिणी अमेरिका के पेरू में पहुँचा। सत्रहवीं शताब्दी में रूसियों ने साइबेरिया को अधिकृत करके प्रशान्त महासागर तक अपनी पैठ बना ली। अठारहवीं शताब्दी के कैप्टेन कुक ऑस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड के तटों पर पहुँचा तथा उत्तर-पश्चिमी अमेरिका तक की यात्रा की। उन्नीसवीं शताब्दी में डुइड लिविंग्स्टन, स्टूनली एवं स्पेक ने मिस्र को छोड़कर समस्त अफ्रीका का सर्वेक्षण किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अमेरिका का पेयरे उत्तरी ध्रुव पहुँचा तथा अमण्डसेन (नार्वे) तथा स्काट (इंग्लैण्ड) दक्षिणी ध्रुव पहुँचे। इस प्रकार यूरोपीय लोगों ने चार सौ वर्षों के अन्दर सारे विश्व को अपने पैरों तले रौंद डाला। ऐसे प्रबल पराक्रम एवम् आसुरी साहस के पीछे साम्राज्य स्थापित कर समस्त संसार का धन अपने यहाँ समेटना तथा ईसाइयत का विस्तार करने का उद्देश्य काम कर रहा था। प्रबल व्यक्तिवाद, भौतिकतावाद, स्वार्थ एवं लालच इसमें मुख्य भूमिका निभा रहे थे। ये दुर्गुण अब तो समस्त मानव समाज में फैल चुके हैं। प्राशासनिक साम्राज्य का युग तो अब समाप्त माना जा रहा है, किन्तु आर्थिक साम्राज्य के विविध रूपों द्वारा विश्व का दोहन अभी भी जारी है।

श्रीराम साठे जी बताते हैं कि यूरोपीय प्रसार संसार में अपने ढंग का अकेला है। एक हज़ार वर्षों के अंधकार-युग के बाद सात-आठ शताब्दियों तक रोमन साम्राज्य हावी रहा। ईसाई-शक्ति का विस्तार, पहले तो रोमन साम्राज्य की मदद से तथा बाद में यूरोपियों की सांसारिक आवश्यकताओं की आपूर्तिकर्ता के रूप में हुआ। ईसाई पादरी वर्ग का अधिक-से-अधिक भ्रष्ट होना, चर्च में रिफॉर्मेशन आन्दोलन तथा 'सेक्यूलर' शब्द का ग़लत अर्थ एवं सन्दर्भ में उपयोग, अनियन्त्रिण बढ़ती हुई इच्छाओं के किसी भी क़ीमत पर शमन की अभिलाषा, वैज्ञानिक शोधों का दुरुपयोग, संसार के बहुसंख्य मानवों में भौतिकतावाद की भूख जगाना तथा इस प्रकार की स्वार्थी प्रवृत्तियों से उत्पन्न विश्व के विनाश के भय आदि बातों के कारण सचमुच यूरोपीय विस्तार अद्वितीय माना जा सकता है।

ईसाइयत भी एशिया से यूरोप ले जाई जाकर आध्यात्मिकता के बजाय भौतिकता की ओर मुड़ गयी। वहाँ पर भ्रष्ट धर्मगुरु धन लेकर लोगों में मुक्ति का वितरण करने में लग गये। असहिष्णुता एवं क्रूरता की पराकाष्ठा भी इस धर्म में देखने को मिलती है। इसका आतंक वैज्ञानिक शोधों एवम् ऐतिहासिक गवेषणाओं को भी प्रभावित करता रहा। पन्द्रहवीं शताब्दी में गणित एवं दर्शनशास्त्र पढ़ानेवाली अध्यापिका हाईपेशिया को चर्चविरोधी शिक्षा देने के आरोप में अलेक्जेंड्रिया के चर्च में पकड़ मंगाया गया और नंगा करके घोंघे-सीपों से खुरचकर मार डाला गया। यह आदेश अलेक्जेंड्रिया के बिशप ने दिया था। सेर्वाटस ने मानव शरीर की शल्यक्रिया द्वारा मानव शरीरशास्त्र पर पुस्तक प्रकाशित कराया। पोप बोनी फिस सप्तम, जो मानव शरीरों के पुनर्जीवित हो जाने की कहावत पर विश्वास करता था, ने ऐसे लोगों के बहिष्कार का आदेश जारी किया। इस आदेश के आधार पर सेर्वाटस को जलाकर मार डाला गया। निकोलस कोपर्निकस,

जो स्वयं एक पादरी था, की घटना सुप्रसिद्ध है। उसने ग्रह-नक्षत्रों की गति की गणना के आधार पर यह प्रतिपादित किया था कि पृथिवी आदि ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं न कि पृथिवी की। चर्च के भय से उसने अपनी पुस्तक को ठीक मृत्यु के समय प्रकाशित करवाया। उसकी प्रथम प्रति जिस दिन उसे मिली, उसी दिन उसकी मृत्यु हो गयी। चर्च ने उसी वर्ष (1543) पुस्तक को प्रतिबन्धित कर दिया।

तिथि-निर्धारण पर चर्च का प्रभाव

इस प्रकार के माहौल में चर्च के इस विश्वास को, कि विश्व की उत्पत्ति 4004 ई.पू. में हुई, कौन चुनौती दे सकता था। अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दियों में जब मिस्र, बेबीलोनिया आदि की प्राचीन सभ्यताएँ प्रकाश में आयीं, तब उनके तिथ्यांकन पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इनकी तिथि 4000 ई.पू. अधिक प्राचीन न होने पाए, इसका भरपूर प्रयास किया गया। यहाँ तक कि मानव 10,000 वर्ष पूर्व ही सुसंस्कृत हो सका, यह मान्यता अभी भी पुरातत्त्वज्ञों एवम् इतिहासविदों में बद्धमूल है। लेकिन विज्ञान ने चर्च की प्रतीक्षा नहीं की। वह अपनी गति से बढ़ता रहा। आज जब नृवंश की प्राचीनता 40 से 60 लाख वर्ष तक पहुँच रही है, तब भी सुसभ्य एवं सुसंस्कृत मानव के विकास को दस हज़ार वर्ष के अन्दर ही रखने का दुराग्रह पुरातत्त्वज्ञों में देखने को आ रहा है। असीमाव नामक जीवविज्ञानी तो मानववंश की प्राचीनता को 7.5 करोड़ वर्ष पूर्व तक ले जाते हैं। सेकुलर राज्य-राष्ट्र वैज्ञानिक खोजें तो चर्च की पकड़ से मुक्त होती चली गयीं, किन्तु वे 'सेकुलरवाद' के चंगुल में फँस गयीं। सेकुलरवाद ईसाइयत के विपरीत अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। यूरोप के लोग अपने ही धर्मपुरोहितों के भ्रष्टाचार से पीड़ित होकर उससे मुक्ति पाने के लिये बेचैन हो रहे थे। उन्होंने 'राज्य-राष्ट्रों' की स्थापना में इसका हल ढूँढ़ लिया तथा चर्च के साम्राज्यवाद से मुक्ति प्राप्त की। इसे 'सेकुलरवाद' का नाम दिया गया। इस प्रकार राज्यराष्ट्रों ने तो पारलौकिक ऐषणा से मुक्ति प्राप्त कर ली, किन्तु इहलौकिक ऐषणाओं में फँस गया। भौतिकतावाद के चंगुल में फँसकर दूसरों की क़ीमत पर अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति उनका लक्ष्य बन गया। इस प्रवृत्ति ने सारी मानवता को प्रभावित किया। जीवन की सेकुलर पद्धति ने सांसारिक भोग की भावना को बढ़ाया। इसके लिए वैज्ञानिक खोजों द्वारा भी आधारभूमि प्राप्त की गयी।

यान्त्रिक विश्व

सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दियों के यूरोप में न्यूटन के यान्त्रिक विश्व की अवधारणा बलवती रही। कोपर्निकस, गैलीलियो तथा न्यूटन ने भौतिकशास्त्र तथा खगोलशास्त्र में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। सत्रहवीं शताब्दी में डेकार्टे ने तर्क की विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया तथा एक नवीन खोज सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जिससे प्रकृति का गणितशास्त्रीय विवरण देने का मार्ग प्रशस्त हुआ। अगली दो शताब्दियों में भी न्यूटन का यान्त्रिक विश्व छाया रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में डार्विन ने विकासवाद का सिद्धान्त दिया, जिसमें 'योग्यतम (योग्यता) की उत्तरजीविता' (Survival of the fittest) की अवधारणा का नारा दिया गया। यान्त्रिक विश्व, प्रगति एवं विकासवाद के सिद्धान्तों का सामूहिक परिणाम यह हुआ कि 'ईश्वर को दरकिनार' किया जा सकता है, ऐसी धारणा बनी। स्टीफेन हॉकिंग, जिन्हें आइन्स्टीन के बाद इस

समय सबसे बड़ा वैज्ञानिक माना जाता है, ने यह कहा कि एक बार बिग बैंग (Big Bang) या महाविस्फोट के बाद तो विश्व अपने आप कतिपय नियमों के अंतर्गत चलता चला जा रहा है। उसके बाद ईश्वर की क्या आवश्यकता रह गयी। उसने यह भी घोषणा की कि 'ईश्वर मर चुका है– यह जानकारी लोगों को नहीं है, तभी तो लोग अभी भी इस विषय पर गोष्ठियाँ आयोजित करते एवं लेख लिखते हैं।' बेकन के समय से ही विज्ञान का उद्देश्य वह ज्ञान प्राप्त करना रहा है, जिससे प्रकृति को नियन्त्रित करके उस पर आधिपत्य प्राप्त किया जा सके। श्री साठे जी का कहना है कि बेकन ने जिस प्रयोगधर्मा खोज-पद्धति की वक़ालत की, वह न केवल उद्वेगपूर्ण वरन् पापी भी थी। उसके अनुसार प्रकृति का उसके विचरण-स्थल में ही 'शिकार करना पड़ेगा', 'अपनी सेवा के बन्धन में बाँधना' एवं 'गुलाम' बनाना होगा, उसे 'बाध्य' करके उसके रहस्यों को प्राप्त करने के लिये 'यातना' देना भी विज्ञान का उद्देश्य होना चाहिए।

इस प्रकार के मनोभाव एवं प्रवृत्ति से लैस यूरोपीय मानव ने अपनी विश्व-विस्तार यात्रा की। रास्ते में आनेवाली संस्कृतियों को अपने छल-बल एवं कपट द्वारा या तो नष्ट कर दिया अथवा सदैव के लिये अपने पावों तले बनाए रखने के लिये उनके इतिहास को अपने ढंग से विकृत करके लिखने का प्रयास किया। अर्नाल्ड टॉयनबी का कहना है कि यूरोपीयों का यह मानना था कि संस्कृति की एक ही धारा– यूरोपीय धारा है। अन्य संस्कृतियाँ या तो आधे रास्ते सूख गयीं अथवा उसी से निःसृत हुईं।

नये मिथकों का निर्माण

अब हम यूरोपीयों द्वारा लिखित भारतीय इतिहास पर दृष्टि डालते हैं। उन्होंने अपनी खोज के उत्साह में अनेक मिथकों का सृजन किया तथा अनेक स्वार्थ-निर्मित अवधारणाओं का पोषण किया। इनमें से कुछ प्रकार हैं : 1. तुलनात्मक भाषाविज्ञान, 2. इससे काम चलता न देखकर कपालमिति (Caphalic Index) 2. ऋग्वेद का काल, तत्पश्चात् ब्राह्मणकाल, उपनिषद् एवं सूत्रकाल आदि, 3.-4. रामायण, महाभारत आदि महाकाव्य काल, 5. तुलनात्मक भाषाविज्ञान का सहउत्पाद आर्य समस्या, 6. इतिहास में प्रागैतिहास, पाषाण-काल, पुरापाषाण, मध्यपाषाण, नवपाषाण, ताम्रपाषाण, लौह-युग, आदि की कल्पना, 7. विकासवाद के अंतर्गत पशु से मनुष्य का विकास, 8. भारतीय कालगणना को कल्पना की उड़ान मानकर उपेक्षा करना, आदि।

यूरोप में ईसाइयत ही इतिहास

इसके पहले कि हम इतिहास के भारतीय पक्ष की स्थापना पर चर्चा करें, यूरोप में इतिहास की अवधारणा की संक्षिप्त समीक्षा समीचीन रहेगी। डॉ. वासुदेव पोद्दार जी का मानना है कि पश्चिम में कालतत्त्व का दर्शन ही नहीं है। अरस्तु कविता को इतिहास की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक मानता था। कार्ल जेसपर्स का कहना है कि पश्चिम के संसार में इतिहास-दर्शन ईसाई-मत में निहित था। हीगल अभी भी यह कह सकता है कि सभी इतिहास क्राइस्ट के पास से आता है और उसी तक जाता है। ईश्वर के पुत्र का प्रकटीकरण विश्व इतिहास की धुरी है। विश्व इतिहास का यह ईसाई ढाँचा हमारे कालक्रम का दैनन्दिन साक्षी है। रांके-जैसे इतिहासकार तो पश्चिम के

इतिहास को ही विश्व का इतिहास मानते थे। विश्व की उत्पत्ति अब से छः हज़ार वर्ष पूर्व हुई थी, इस ईसाई मान्यता ने बहुत दिनों तक इतिहासकारों को बाँधे रखा। लेकिन स्वतंत्र वैज्ञानिक चिन्तन ने क्रमशः इस बन्धन को ढीला करके तोड़ डाला। अब पुरा-इतिहास और विश्व की उत्पत्ति के सन्दर्भ में लाखों, करोड़ों और अरबों वर्षों की बातें की जाती हैं, किन्तु इनमें अस्थिरता एवम् अनिश्चितता का पुट हमेशा बना रहता है। काल रबड़ का नपना हो गया है, जिसे अगला प्रमाण मिलने पर लाखों वर्ष आगे खींच दिया जाता है। इसमें वैज्ञानिकता एवं तर्कसम्मत गणना का अभाव है।

इतिहास की भारतीय धारणा : इतिहास-सूत्र

डॉ. पोद्दार का मानना है कि भारतीय परम्परा में मिथक की संरचना कभी नहीं हुई, यह संस्कृति मिथक-प्रधान नहीं विज्ञान-प्रधान है। वास्तव में समस्त इतिहासपुराण-साहित्य एक सूत्रविशेष के अन्तर्गत लिखा गया है। वह सूत्र इस प्रकार है :

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्त कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥

इतिहास केवल पूर्व-घटनाओं की सूचीबद्ध तालिकामात्र नहीं हैं। इसमें केवल उन्हीं घटनाओं (पूर्ववृत्तों) को सम्मिलित किया जाता है, जो समाज के लोगों को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की ओर ले जाने में समर्थ हो। इसी कारण इनका उपदेश से समन्वित होना आवश्यक है। साथ ही इनको 'कथायुक्त' भी होना चाहिए। मानव एवं ऋषि-वंश का इतिहास तो 'कथायुक्त' होता ही है। फिर वह कौन-सा 'पूर्ववृत्त' है, जिसको कथायुक्त करके इतिहास के रूप में प्रस्तुत करने का उल्लेख इस सूत्र में किया गया है? निश्चित ही ये सृष्टिरचना-सम्बन्धी घटनाएँ हैं, जिन्हें कथाओं के माध्यम से लोक में प्रचारित करने का विचार प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने किया। इस प्रकार सारा समाज इतिहास में शिक्षित किया जा सका। इतनी सुन्दर व्यवस्था संसार के किसी भी समाज में नहीं की जा सकी। जिन प्राचीन संस्कृतियों में इस प्रकार की कथाएँ हैं, यह उनमें भारतीय सृष्टिकथाओं की छाया अथवा स्थानीय संस्करणमात्र लगती हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव (रुद्र) वे शक्तियाँ हैं, जो भारतीय मान्यता के अनुसार सृष्टि-रचना में सहभागी होती हैं। इन्हें मानवीकृत कर सरल कथाओं के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया। ब्रह्मा आदि देवता हैं, फिर भी उनकी उत्पत्ति नारायणविष्णु के नाभिकमल से जानी जाती है। नारायण जल परिवेष्टन में शेषनाग की शय्या पर लेटे हुए हैं। लक्ष्मी उनकी पत्नी हैं। भूमि ही उनकी पत्नी हैं। **विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे** में भूमि ही लक्ष्मी, श्री आदि हैं। ऋग्वेदोक्त श्रीसूक्त को इस दृष्टि से पढ़ें, तो सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। ब्रह्मा ज्ञान के देवता हैं। वेद अर्थात् ज्ञान अर्थात् ब्रह्मा। ज्ञान अथवा ब्रह्मा की चर्या में रहना ही 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है। अभी तो इस शब्द का अर्थ कुछ दूसरा ही लगाया जाता है, जो द्वितीय अर्थ है। ब्रह्मा के चार मुख भी ज्ञानवेद के प्रतीक ही हैं। बाद में सरस्वती की ज्ञान की देवी के रूप में कल्पना, ब्रह्मा का उन पर आसक्त होकर उनके पीछे भागना, सरस्वती का स्थान-स्थान पर विलुप्त हो जाना, आदि कथा उनके साथ जुड़ती गयी। नदी देवी और ज्ञान की देवी एक हो गयी। यह भारतीय मनीषा का कमाल है। विष्णु संसार के पालन के देवता हैं। वे समय-समय पर

अवतार लेते हैं तथा ग़लत दिशा में जाते हुए संसार या मानव समाज को सही दिशा देने का काम करते हैं। वे 'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक' हैं। प्रत्येक मनुष्य में उनका अंश है, प्रत्येक जीव में उनका अंश है– यह परिकल्पना समस्त संसार को **जगत्यां जगत्** को सही मार्ग पर जाने का उपदेश देने के साथ जीव-जगत् को एकसूत्र में बाँध देती है। रुद्र विनाश के देवता हैं। लेकिन ये ही रुद्र जब मंगल कल्याण करते हैं, तो शंकर और शिव बन जाते हैं। पृथिवी जल में से जब निकलती है, तब उसके जल का आहरण करनेवाले भगवान् वराह, विष्णु का अवतार बन जाते हैं। यह श्वेतवाराह कल्प उन्हीं को समर्पित है। इस कल्प के वे ही इतिहास पुरुष हैं–

इतिहासः कुशाभासः सूकरास्यो महोदरः।
अक्षसूत्रं घटं विभ्रत्पंकजाभरणान्वितः॥

–श्रीतत्त्वनिधि

पृथिवी की उत्पत्ति

पृथिवी जल से धीरे-धीरे बाहर निकलती है। शतपथब्राह्मण में **आपः पुष्करपर्णमः** (10.5.2.11) तथा **आपो वै पुष्करम्** (7.4.1.8) कहकर इसी का विवरण दिया गया है। महाभारत (शान्तिपर्व) में–

मानसस्येह या मूर्तिब्रह्मत्वं समुपागता।
तस्यासन विधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते।

ब्रह्मा के आसन के लिये पृथिवी को पद्म कहते हैं। वायुपुराण में– **तन्निमित्तं समुत्पन्नं लोकपमं सनातनम्** तथा **पृथिवी कीर्तिता कृत्सना पद्माकारा मया द्विजाः। पद्मेत्यभिहिता कृत्सना पृथिवी बहुविस्तरा** कहकर यह बताया गया है कि पहले बहुत विस्तारवाली पद्माकार पृथिवी एक ही थी। मार्कण्डेयपुराण में **तदेवं पार्थिव पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम्** कहकर इस पार्थिव पद्म को चार पत्रोंवाली बताया गया है अर्थात् यह पृथिवी, जो पहले कमल के पत्ते के आकारवाली, बहुत विस्तारवाली थी, बाद में चार पत्रोंवाली हो गयी अर्थात् वह चार महाद्वीपों में बँट गयी। बाद में सात महाद्वीपों में बँट गयी। प्रारम्भ में यह पृथिवी 'कूर्मपृष्ठसमा', 'काल्वाली' तथा 'अलोमिका' कही गयी है। ब्रह्मा को सृष्टि के बाद 1 करोड़ 70 लाख 64 हज़ार वर्षों तक अकेला रहना पड़ा, जिसके बाद उन्होंने सृष्टि-रचना प्रारम्भ की। सूर्यसिद्धान्त (1.24) में कहा गया है–

कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः

अर्थात् सैंतालीस हज़ार चार सौ दिव्य वर्षों (47400 × 360 = 17,64,000 मानव-वर्ष) के बाद सृष्टि-रचना प्रारंभ हुई। प्रथम व्यवधान मधु-कीटों द्वारा उत्पन्न किया गया। इसे मधु-कैटभ युग कहा गया। ग्रह-नक्षत्रों आदि की घटनाओं को तारकासुर आदि के रूपक के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

कहा जाता है कि रुद्र शिव के ताण्डव-नृत्य के समय उनके पाद-प्रहार से महाद्वीपों का

विचलन प्रारम्भ होता है। आज महाद्वीपीय विचलन सिद्धान्त (Continental drift theory) एक वैज्ञानिक तथ्य बन गया है। इसका परिष्कार पटलविवर्तन सिद्धान्त (Plate tectonics) के रूप में किया गया, जिसमें पृथिवी पर जल के ऊपर दिखनेवाला भूभाग ही नहीं वरन् उसको आश्रय देनेवाले विशाल जगमग्न पटलों सहित ये महाद्वीप परस्पर दूर होते चले जा रहे हैं। अटलान्टिक सागर का विस्तार बढ़ रहा है अर्थात् यूरोप, अफ्रीका के महाद्वीपों से दोनों अमेरिकी महाद्वीप दूर खिसक रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया दक्षिण की ओर खिसक रहा है। भारतीय उपमहाद्वीप उत्तर-पूर्व की ओर खिसक रहा है। डॉ. रविप्रकाश आर्य ने हमारा ध्यान इस बात की ओर दिलाया है कि प्राचीन भारतीयों को इस बात का पता था। वह बताते हैं कि तैत्तिरीयसंहिता में **एतावती वै पृथ्वी यावती वेदी** कहकर इसका संकेत किया गया है यज्ञवेदी के निर्माण में दो गतियों की कल्पना की गयी है– प्रथम 'उदक्रम' (उत्तर की ओर गति) तथा द्वितीय 'प्राक्क्रम' (पूर्व की ओर की गति)। जिस प्रकार पृथिवी (भारतभूमि की धरित्री) गति करती है, उसी प्रकार गतियुक्त यह वेदी का भी निर्माण करना चाहिए। अब तो 'पटल-विवर्तन' के सिद्धान्त के पोषण में सागरतल विवर्धन (Sea-floor Spreading) का सिद्धान्त भी सामने आ गया है। अति संक्षेप में सूत्र रूप में दिया गया यह विवरण यह संकेत करने के लिये दिया गया है कि प्राचीन भारतीय पुराणेतिहास में दिए गए रूपकों को आधुनिक वैज्ञानिक शोधों के परिप्रेक्ष्य में देखने की दृष्टि विकसित करें। शिव का कैलास निवास,हिमालय की उत्पत्ति, उमा (उ = ऊष्मा + मा = निषेध) का शिव से विवाह, पर्वत की पुत्री पार्वती से शिव का विवाह, शिव द्वारा गंगा को सिर पर धारण करना, दक्षिणी हिमालय की श्रेणियों का शिवालिक– शिव की अलकें– नामकरण आदि हमारे इतिहास के अंग हैं, ये मिथ्या अथवा मिथक नहीं हैं, वैज्ञानिक तथ्य हैं। आवश्यकता यह है कि आप और हम इनकी समुचित व्याख्या करें। अपने इतिहास के इन बन्द पृष्ठों को खोलें। यह बावनवीं शताब्दी की मांग है कि पाश्चात्य विज्ञान जिस प्रकृति को यन्त्र मानकर प्रताड़ना एवं यातना द्वारा भी उसके रहस्यों को उगलवाने का आसुरी प्रयास कर रहा है, उसके अपने सिद्धान्तों एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों को सहारा लेकर इन पौराणिक रहस्यों को खोलें तथा यह दिखा दें कि हमारे पूर्वज इनसे अनभिज्ञ नहीं थे वरन् उन्होंने इन रहस्यों को मानव-मस्तिष्क की संरचना के अनुकूल ऐसे कथावार्ताओं द्वारा उनका ऐसा मार्ग-निर्धारण किया कि मानव एवं प्रकृति एक दूसरे के विरुद्ध संग्रामरत न दिखाई पड़ें वरन् परस्पर पूरक के रूप में चिरकाल तक सहअस्तित्व निभाते रहें। पर्यावरण के संतुलन को नष्ट करनेवाले, उसकी विभीषिका का आतंक दिखाकर दूसरों को संतुलन को संयम को पाठ पढ़ाते-पढ़ाते अपने स्वार्थ के कारण अब इससे दूर रहने का संकल्प दिखाकर विश्व को क्या उसी विनाश की ओर नहीं ले जा रहे हैं, जिसकी झलक अनेक देवासुर संग्रामों में देखने को मिलती है।

भारतीय कालगणना

विगत अनेक वर्षों से भारतीय कालगणना का विषय एक आन्दोलन का रूप ले रहा है। इसका प्रभाव समाज और मीडिया पर पड़ा है। अनेक लोग अभी भी ऐसे हैं, जिन्हें भारतीय कालगणना की बड़ी-बड़ी संख्या हजम नहीं हो रही है। ऐसे लोगों ने अपने कान और आँखें बद कर रखी हैं।

पाश्चात्य खगोलविज्ञान भी ऐसी ही लम्बी संख्याओं की बातें कर रहा है। हाँ, यह अवश्य है कि वे अभी भी अनिश्चयात्मक भाषा में बोलते हैं, उनकी संख्याएँ प्रयोगात्मक स्तर पर ही हैं, किन्तु वे भारतीय संख्याओं के समीप पहुँच रही हैं, जो निश्चयात्मक और सुनिश्चित गणितीय गणनाओं पर आधारित हैं। पाश्चात्य खगोलज्ञों का मत अमेरिकी वैज्ञानिक हबल ने 1625 में लाखों आकाशगंगाओं के अस्तित्व को स्वीकार किया। उसने यह भी बताया कि ब्रह्माण्ड का सतत् प्रसार होता जा रहा है। इसका सरल-सा अर्थ यह है कि प्रारम्भिक अवस्था में वह अधिक संपीडित अवस्था में रहा होगा, अत्यधिक संपीडित का अर्थ है अधिक सघनता। बेल्जियम के जॉर्ज लेमेन्तेर ने इस सिद्धान्त को समझाया तथा 'बिग बैंग' का नाम दिया। उसके अनुसार करोड़ों वर्ष पहले घनीभूत विश्व में विस्फोट हुआ, जिसने अति सघन पिण्ड (जिसे हमारे शास्त्रों में 'हिरण्यगर्भ' कहा गया है) छिन्न-भिन्न होकर दूर-दूर छिटक गया। ये अभी भी एक फूलते हुए गुब्बारे की तरह हज़ारों किलोमीटर प्रति सेकेण्ड की गति से गतिमान हैं। इन्हीं गतिशील अंशों से आकाशगंगाएँ बनीं। एक अन्य सिद्धान्त थॉमस गोल्ड और हर्मन ब्राण्डी ने दिया तथा जिसका प्रतिपादन फ्रेड हायल ने किया, 'सतत् सृष्टि का सिद्धान्त' कहा जाता है। इसके अनुसार आकाशगंगाएँ परस्पर दूर तो होती जाती हैं, परन्तु उनका आकाशीय घनत्व अपरिवर्तित रहता है। तात्पर्य यह है कि पुरानी आकाशगंगाओं के एक दूसरे से दूर होते जाने के कारण स्थान रिक्त नहीं होता, नयी आकाशगंगाएँ उनका स्थान ले लेती हैं। एलेन संडेज ने 'दोलनात्मक विश्व' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जिसके अनुसार इस विश्व में आकुंचन एवं प्रसारण होता रहा है। उनके अनुसार एक अरब बीस करोड़ वर्ष पूर्व एक भयंकर विस्फोट हुआ, तब से यह लगातार फैल रहा है। अभी दो अरब नब्बे करोड़ वर्ष तक यह और चलता रहेगा, तत्पश्चात् यह सिकुड़ने लगेगा। इस प्रकार यह प्रक्रिया चार अरब दस करोड़ वर्ष तक चलती रहेगी और जब अत्यधिक घनीभूत हो जायेगी, तब पुनः विस्फोट होगा। इसे 'अन्त विस्फोट' कहते है। भारतीय शास्त्रीय चिन्तन में यही बात गणितीय आकलनों के आधार पर बताई गई है। वे जिसे एक अरब दस करोड़ वर्ष बताते हैं, उसे हमारे शास्त्र एक अरब सत्तानवे करोड़ वर्ष बताते हैं; प्रसारण और आकुंचन की प्रक्रिया में प्रत्येक में वे चार अरब दस करोड़ वर्ष का काल मानते हैं। अथर्ववेद (8.2.11) में चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष कहा गया है– **शतं ते अयुतं हानान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः**। अर्थात् सौ अयुत या दस हज़ार का शतगुणा करके उसके बायें ओर क्रमशः 2,3 और 4 रखने से युगमान प्राप्त होता है। यह संख्या चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की आती है। यह कल्प का एक दिन है। रात्रि भी इतने की ही होती है। इसकी संपुष्टि ऋग्वेद में **यथापूर्वं कल्पयत्** कहकर बार-बार सृष्टि होने की ओर संकेत कर दिया गया है। प्रसिद्ध कथन कि 'पूरे में से पूरा निकाल लेने पर भी पूरा ही बचा रहा जाता है' आज के अनुसंधानों से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि ब्रह्माण्ड में निरन्तर निर्माण एवं ध्वंस-कार्य चलते रहने के बावजूद उसके घनत्व में कोई परिवर्तन नहीं होता।

ऐसे में हमें अब अपनी बात पाश्चात्य खगोलविदों के साथ-साथ पाश्चात्य जगत् के सामने रखने में क्यों संकोच होना चाहिए। चार लाख बत्तीस हज़ार वर्षों का एक कलियुग होता है। 'कलि' शब्द 'कलन' अर्थात् गणना करने के अर्थ में एक इकाई के रूप में प्रयुक्त होता है। विकास माप में 4-3-2-1– इस प्रकार का क्रम रखा गया है। प्रारम्भ में अधिक काल लगता है।

बात में क्रमशः यह कम होता जाता है। ब्रह्माण्ड में इस प्रकार सृष्टि और विनाश का क्रम चलता रहता है। इसे हमारे शास्त्रों ने एक प्रभु या स्रष्टा नामक अभिकृति को देकर मानव चेतना– मन और मस्तिष्क– सभी को संतुष्ट किया है। किन्तु पाश्चात्य विद्वान् 'यान्त्रिक विश्व' की अवधारणा के अन्तर्गत स्रष्टा की आवश्यकता ही नहीं मानते। उनके अनुसार 'बिग बैंग' के महाविस्फोट के बाद तो यह विश्व स्वतः यन्त्रवत् चल रहा है। इसमें ईश्वर की क्या आवश्यकता है। इस समय पाश्चात्य संसार में सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त खगोलविद् स्टीफेन हॉकिंग का मत हम उद्धृत कर चुके हैं कि ईश्वर मर चुका है, इसकी ख़बर लोगों को नहीं है, तभी तो इस विषय पर अभी भी संगोष्ठियाँ आयोजित हो रही हैं तथा लेख लिखे जा रहे हैं। यह तो समय ही बतायेगा कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक अभी भी जीवित है या मर चुका है।

हम यह कह चुके हैं कि हमारा इतिहास इस कल्प के प्रारम्भ से शुरू होता है जब पृथिवी पुष्करपर्णी थी, महाद्वीप अभी परस्पर जुड़े हुए थे, तभी से अब तक का इतिहास हमारे ग्रन्थों में सुरक्षित है। वर्तमान मानव की उत्पत्ति वैवस्वत मनु द्वारा अब से लगभग बारह करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी, यह शास्त्रीय गणना बताती है। पुरातत्त्व अभी भी चालीस या साठ लाख वर्षों में ही अटका हुआ है। प्रसिद्ध इतिहासकार अर्नाल्ड टॉयनबी दो या ढाई करोड़ वर्ष पूर्व मानव की उत्पत्ति ले जाते हैं। असीमाव नामक जीवविज्ञानी 'प्रोटीन स्ट्रक्चर सिन्थेसिस' के आधार पर मानव की उत्पत्ति 7 करोड़, 50 लाख वर्ष बताते हैं। इस बात को बहुत से पुरातत्त्वज्ञ जानते ही नहीं और मेरे द्वारा उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किए जाने पर इसे स्वीकार करने को तैयार ही नहीं हैं। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि ये ऐसे शुभ संकेत हैं, जो प्राचीन भारतीय शास्त्रों के उल्लेखों की पुष्टि करते हैं। जब हम इतिहास की परिभाषा इति + ह + आस = 'ऐसा निश्चयपूर्वक हुआ', करते हैं, तो सन्देहों, सम्भावनाओं और झटके में आगे कदम बढ़ानेवाली हिस्ट्री कभी तो हमारे साथ कदम मिला सकेगी, इसकी आशा करनी चाहिए। हमें केवल इतना करना है कि हम अपना शोध-कार्य धैर्यपूर्वक आगे बढ़ाते जायें।

समस्त मानव एक जाति

हमारी इतिहास की अवधारणा में कोई 'प्रागैतिहासिक काल' नहीं था। मानव इतिहास का पूरा कालखण्ड इतिहास ही है। इस इतिहास में कभी भी वह मात्र जंगली अवस्था में नहीं रहा। वैसे संसार में किसी भी कालखण्ड में ऐसी स्थिति नहीं बताई जा सकती, जब सभ्य-सुसंस्कृत मानव के साथ-साथ असभ्य एवं जंगली अवस्था में मानवों का अस्तित्व न रहा हो। यह एक शाश्वत तथ्य है। लेकिन जिस किसी भी पुरासंस्कृति के लोगों ने अपने अवशेष छोड़े हैं, उनमें से कोई भी– कोई एक भी ऐसा नहीं मानता है कि उसके पूर्वज जंगली या असंस्कृत रहे हैं। सभी सभ्यताओं में अपने पूर्वजों के प्रति आस्था और सम्मान की भावना पाई जाती है। किसी ने उन्हें बन्दर या वनमानुष नहीं माना है। मानव जाति सारे संसार में एक ही है। **समानप्रसवात्मिका जातिः** सूत्र के अनुसार किसी भी सांस्कृतिक अवस्था में जीवन-यापन करनेवाली, पृथिवी के किसी भी भूखण्ड में रहनेवाली मानव जाति का व्यक्ति किसी भी अन्य मानव से सन्तान की उत्पत्ति कर सकता है। आधुनिक विज्ञान के मत से डी.एन.ए. तथा जीन्स और रक्त के वर्गीकरण के आधार पर भी नस्लवाद

(receism) का यूरोपीय सिद्धान्त अब ध्वस्त हो चुका है। मानव की दो विशेषताएँ उसे अन्य जीव-वर्ग से अलग करती हैं– 1. मनन की प्रवृत्ति एवं 2. बोलने की शक्ति। मननशीलता मनु की सन्तान को मानव बनाती है। बोलने की शक्ति उसे पशु जगत् से अलग करती है। ये दोनों ही शक्तियाँ उसे ईश्वर से ही मिली हैं। ए.एल. क्रोएबर का कहना है कि अश्मीभूत मानवों के खोपड़ी के आन्तरिक भागों में कुछ आधिकारिक विद्वानों ने भाषा के क्षेत्र को पर्याप्त विकसित रूप में, सिनैन्थ्रापस-जैसे प्राचीन मानव में भी पता लगाया है जिससे यह ज्ञात होता है कि ये प्रजातियाँ बोलती थीं। वे आगे कहते हैं कि संस्कृति तभी शुरू होती है, जब भाषा उपस्थित हो और इसके बाद से दोनों में किसी एक की समृद्धि, दूसरे के विकास को आगे ले जानेवाली होती है। इस प्रकार भाषा और संस्कृति, मनुष्य में परस्पराश्रयी हैं।

भाषा ईश्वरीय देन

सनातन भारतीय मतानुसार भाषा ईश्वर से उद्भूत हुई, जिसे सबसे पहले देवों ने उच्चारित किया तथा ऋषियों से सुना और अन्यों को सिखाया (ऋग्वेद, 8.100.10-11)। भाषाओं में ऋग्वेद की भी भाषा सबसे प्राचीन मानी जाती है, जिसको उसी रूप में सुरक्षित रखने के लिये अद्वितीय प्रबन्ध किये गये हैं। यह भाषा अत्यन्त संश्लिष्ट है। कालान्तर में भाषा सरलता की ओर अग्रसर होती चली गयी और शनैः-शनैः विश्लेषणात्मक होती गयी। श्री गुरुदत्त ने इस सम्बन्ध में वैदिक भाषा से प्रारम्भ करके संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, इंगलिश तक भाषा के क्रमशः ह्रासमान स्वरूप को स्पष्ट करनेवाले कुछ विदेशी विद्वानों को उद्धृत किया है।

भाषाओं में क्रमिक ह्रास

मैक्समूलर का कहना है कि संस्कृतज्ञों ने वैदिक भाषा का कबाड़ा कर दिया। वह कहता है कि उन्होंने वैदिक कवियों के समृद्ध एवं शक्तिशाली भाषा-शैली को आधुनिक 'सिपाही' के क्षीण एवम् अशुद्ध बकवास में बदल दिया। यहाँ 'सेपॉय' से उनका मतलब ब्रिटिश सेना में भारतीय सिपाहियों की अंग्रेज़ी बोली से है। दूसरी ओर विलियम जोंस संस्कृत-भाषा के विषय में लिखते हैं कि संस्कृत-भाषा, इसकी प्राचीनता जो कुछ भी हो, आश्चर्यजनक बनावटवाली, ग्रीक से अधिक परिपूर्ण, लैटिन की अपेक्षा अधिक विपुल तथा इन दोनों से ही अधिक परिष्कृत है। एक अन्य लेखक आधुनिक फ्रेंच एवम् इंगलिश भाषाओं की तुलना ग्रीक एवं लैटिन से करते हुए कहते हैं, 'निश्चय ही आधुनिक इंगलिश एवं फ्रेंच-भाषाएँ अधिक सूक्ष्म, सरल एवं लोचदार हैं.... लेकिन क्या हम यह कह सकते हैं कि प्राचीन शास्त्रीय भाषाएँ ग्रीक अथवा लैटिन, इनसे घटिया हैं?... यह (ग्रीक) एक ऐसी भाषा है, जिसका उत्स देवत्वमय है... यदि हमें एक बार इसका चस्का लग जाय, जो सभी अन्य भाषाएँ प्रारम्भिक एवं कठोर ही लगेंगी। ग्रीक-भाषा का बाह्य स्वरूप ही स्वयं में आत्मा को प्रकाशित करनेवाला है।'

इस प्रकार वैदिक से लेकर आधुनिक भाषाओं की ओर जब हम देखते हैं, तो पाते हैं कि इनमें क्रमिक ह्रास होता रहा तथा ये उत्तरोत्तर विश्लेषणात्मक होती चली गयीं। जेसपर्सन नामक एक विद्वान् कहते हैं कि सर्वत्र हम यही पाते हैं कि उच्चारण को सरल बनाने की प्रवृत्ति दिखाई पड़

रही है जिससे कि (उच्चारण में काम आनेवाली) मांसपेशियों का प्रयास कम किया जा सके। क्लिष्ट उच्चारणोंवाली ध्वनियों को छोड़ दिया जाता है। ... आधुनिक शोधों ने यह दिखाया है कि प्राक्-आर्य ध्वनि प्रणाली उससे भी अधिक क्लिष्ट थी, जिसकी उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हम कल्पना करते थे।'

इस पर टिप्पणी करते हुए गुरुदत्त कहते हैं कि यह ठीक है कि कष्टप्रद ध्वनियाँ छोड़ दी गयी हैं, परंतु यह इस बात को प्रकट करता है कि मनुष्य के उन ध्वनियों को उत्पन्न करने के सामर्थ्य में ह्रास हुआ है। यह न तो भाषा की उन्नति का सूचक है और न ही मनुष्य के उच्चारण-सामर्थ्य की उन्नति का। यह बात आधुनिक भाषाविज्ञान की जड़ खोद देती है। यह विकासवाद के सिद्धान्त को भी पलट देती हैं, जिसमें यह प्रतिपादित किया जाता है कि भाषा की उत्पत्ति एकपदीय, सरल, सार्थक एवं निरर्थक उच्चारणों से होती है। इसके विपरीत वैदिक भाषा एक ऐसी भाषा है, जिसके प्रत्येक वर्ण-अक्षर का अर्थ होता है। जिस प्रकार सार्थक शब्दों को एक व्यवस्थित क्रम में जोड़कर हम वाक्य बनाते हैं, उसी प्रकार सार्थक वर्णों-अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाते हैं। पूरा वैदिक वाङ्मय 64 अक्षरों द्वारा निर्मित भाषा पर आधारित है, जिसमें केवल 47 मूल अक्षर हैं। मानव-मुख से अनेक प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण किया जा सकता है, किन्तु उनको प्रयत्न स्थानों के अनुसार वर्गीकृत करके मानव-वर्णों का निर्माण हुआ है। इसी से भाषा बनती है, जिसे बचपन से ही प्रयत्नपूर्वक आगे की पीढ़ी में संक्रमित किया जाता है। अनेक उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि बचपन के कुछ निर्माणात्मक वर्षों में यदि भाषा को देने का कार्य का प्रारम्भ नहीं किया गया, तो मानव पशुतुल्य गूंगा हो जाता है।

भारतीय शास्त्र, भाषा को दैवीय कृपा मानते हैं तथा उसके संरक्षण के लिय प्रभावी व्यवस्था करते हैं।

मननशील मानव

मानव संस्कृति का दूसरा घटक उसकी मननशीलता है। इसी के कारण वह अपने से ऊपर की किसी सत्ता में विश्वास करता है। मनुष्य चाहे जंगली अवस्था में गिरि-कन्दराओं में रहता हो अथवा अत्याधुनिक सर्वसुविधासंपन्न घरोंवाले नगरों में, उसकी यह विशेषता बनी रहता है। वह इस प्रकार अपने विश्वास के खण्डन और मण्डन में तर्क-वितर्क करता है। ऐसा विकास सभी अवस्थाओंवाले समाजों में देखने को मिलता है। इसे धार्मिक आस्था कहा जाता है। प्रागैतिहास पर शोध करनेवाले तथा उन पर पुस्तकें लिखनेवाले इन बातों की उपेक्षा कर जाते हैं, जिसके कारण उनके प्राचीनतम इतिहास के विवरण यान्त्रिक एवं निर्जीव लगते हैं।

भारतीयों का खगोलीय ज्ञान

मानवमात्र के आदिम पूर्वज, प्राचीन भारतीयों का खगोलीय ज्ञान भी अत्यन्त उन्नत था। 360 दिनों का वर्ष अभी भी यहाँ प्रचलित है, जिसमें बारह महीने होते हैं। यह सभी जानते हैं कि न तो चन्द्रमा ही तीस दिनों में पृथिवी की परिक्रमा करता है और न ही इस समय पृथ्वी 360 दिनों में सूर्य की परिक्रमा करती है। आजकल 365 दिन 5 घंटे 48 मिनट और 56 सेकेण्ड का एक वर्ष होता है,

जो पृथिवी द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा करने का काल है। लेकिन कोई समय ऐसा था, जब यह परिक्रमा मात्र 360 दिनों में ही पूरी हो जाती थी। तब सूर्य पृथिवी के अधिक निकट हुआ करता था। चन्द्रमा भी पृथिवी के अधिक निकट था और कम समय में उनकी एक परिक्रमा कर लिया करता था। ब्रह्माण्ड के सभी ग्रह-नक्षत्र एक दूसरे से दूर भाग रहे हैं। डॉ. रविप्रकाश आर्य ने हमारा ध्यान इस ओर दिलाया है कि पृथिवी से सूर्य की दूरी उसके परिक्रमा-पथ पर दस हज़ार वर्षों में एक किलोमीटर बढ़ जाती है अर्थात् एक करोड़ साठ लाख वर्षों में एक घंटे का अन्तर बढ़ जाता है। गणना करने पर यह ज्ञात होता है कि अब से एक अरब सत्तानवे वर्ष पूर्व पृथिवी 360 दिनों में ही एक परिक्रमा पूरी करती थी। उस समय महीन में पाँच ही सप्ताह होते थे, जिन्हें वेदों में 'षडाह' कहा गया है। अभी तक किसी को भी इस षडाह वाले सप्ताह का रहस्य समझ में नहीं आया था। बाद में जब वर्ष की अवधि और लम्बी हो गयी, तब सात दिनों का सप्ताह माना जाने लगा। इसका प्रचलन अब सारे संसार में है। किन्तु भारतीयों को छोड़कर किसी के पास भी इस बात का समाधान नहीं है कि सात दिनों का ही सप्ताह क्यों होता है। इसे सूर्यसिद्धान्त में बताया गया है। भारतीयों ने गणना कर यह जान लिया था कि सौरमण्डल के ग्रह पृथिवी से कितनी दूरी पर हैं। पृथिवी को केन्द्र मानकर यहाँ से सभी ग्रह दूरी के अनुसार इस प्रकार हैं– चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति और शनि। दिन-रात में 24 होरा होता है, जिससे अंग्रेज़ी भाषा का Hour शब्द बना है। समस्त सौरमण्डल का अधिपति होने के कारण सूर्य को प्रथम होरा का अधिपति माना गया। इस क्रम में सूर्य से प्रारम्भ करके, क्रमशः कम दूरीवाले ग्रहों को गिनने पर 24 होरा बीतने के बाद पच्चीसवीं संख्या पर चन्द्र आता, जो अगले दिन के प्रथम होरा का स्वामी माना गया। इसी प्रकार 24 होरा प्रत्येक को देने पर सातों दिनों के नाम सुनिश्चित हो जाते हैं। ये नाम इसी क्रम में सारे संसार में प्रचलित हैं।

इससे कई बातें सामने आती हैं। पहला यह कि 24 घंटों में दिन-रात का विभाजन यूरोपीय नहीं है। दूसरा यह कि यह प्रक्रिया अपनानेवालों ने बिना किसी यन्त्र की सहायता के पृथिवी से इन ग्रहों के नाम भी उनके गुणों के अनुसार ही रखे– यथा बृहस्पति=सबसे बड़े आकारवाला, शनैश्चर=बहुत धीमी गति से चलनेवाला आदि। ये बातें आज के खगोल वैज्ञानिक भी जान गए हैं। भारतीय विज्ञान के अनुसार मंगल पृथिवी का ही अंश है। उसे 'भौम' या 'भूमिपुत्र' भी कहा गया है। यदि दो-चार-दस वर्षों में आधुनिक विज्ञान भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे, तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यही नहीं, सायणाचार्य ने सूर्य के किरणों की गति का भी उल्लेख अपने वेदभाष्य में कर दिया है, जो एक लाख सतासी हजार मील या तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकेण्ड की गति के लगभग आता है। ऋग्वेद (1.50.4) की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं–

योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने।
एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोस्तु ते॥

अर्थात् हे सूर्य, आधे निमेष में तुम्हारी गति दो हज़ार दो सौ योजन है। तुम्हें नमस्कार है।

गणना करने पर 1,87,084.1 मील प्रति सेकेण्ड होती है। आज का विज्ञान 1,87,362.5 मील प्रति सेकेण्ड मानता है।

ये तो वे बातें हैं, जिन्हें किसी प्रकार की मान्यता ही नहीं दी गयी। इन्हें तो मिथक या मिथ्या अथवा कल्पना की उड़ान बताकर तिरस्कृत कर दिया गया। अब हम अति संक्षेप में उसकी चर्चा करेंगे, जिसे इतिहास कहकर हमारे गले मढ़ दिया जाता है।

यद्यपि 1583 से 1588 तक भारत में रहे फिलिप्पो सस्सेती ने सबसे पहले यूरोप का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि यूरोपीय भाषाओं का कुछ सम्बन्ध संस्कृत से है, किन्तु लगभग दो सौ वर्षों के बाद विलियम जोंस ने 1786 में यह सुझाया कि ग्रीक, लैटिन, गोथिक, केल्टिक, संस्कृत, फ़ारसी आदि भाषाएँ किसी एक मूल भाषा से निकली हैं, जिसको बाद में विद्वानों ने 'इण्डो-यूरोपीयन' या 'इण्डो-जर्मनिक' नाम दिया। इस भाषा को बोलनेवालों को 'आर्यन' कहा गया, जो ऋग्वेद में आनेवाले 'आर्य' शब्द की अनुकृति पर लिया गया है। मैक्समूलर आदि यूरोपीय विद्वानों ने एक कल्पित मिथक की रचना कर डाली, जो इस प्रकार है : 'अत्यन्त प्राचीन काल अर्थात् मंत्रकाल में कुछ लोग हिंदुस्तान में आये। वे गोरे थे। वे अपने को आर्य कहते थे। जिनसे वे लड़े, वे काले थे। उन्हें वे 'दस्यु' कहते थे। उन दस्युओं से आर्यों ने यह देश जीता।'

इस मनोरम कूट इतिहास को कुछ इस प्रकार परोसा गया कि यूरोप और भारत सभी जगह इसका डंका बजने लगा। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियाँ इन तथाकथित 'आर्यन्स' का घर खोजने में बीत गयीं। भारत को छोड़कर सर्वत्र इनके मूलस्थान होने की चर्चा चली। ब्रिटिश सोच रहे थे कि जिस प्रकार आर्य, हूण, कुषाण, तुर्क, मुग़ल आदि भारत में आकर शासन करते रहे, उसी प्रकार उनका भी हक़ बनता है। भारतीय यह सोचकर खुश हो रहा था कि उसकी काली चमड़ी कुछ सफेद हो गयी है; क्योंकि अब गोरे साहब भी अपने को आर्य मानने लग गये हैं। एक काल्पनिक तुलनात्मक भाषाविज्ञान अस्तित्व में आ गया। यूरोप और भारत सभी जगह उच्च शिक्षा में इसे एक शास्त्र के रूप में पढ़ाया जाने लगा। किन्तु जैसा इस प्रकार के कृत्रिम शास्त्रों के साथ होता है, इसका भी ज्वार उतर गया। इससे काम चलता न देखकर कपालमिति (Cephalic Index) का सहारा लेकर संसार के मानवों को चार प्रजातियों में बाँट दिया गया। श्वेत, काली, लाल और पीली जातियों का वर्गीकरण किया गया। भारत में गोरे आर्यों ने काले द्रविड़ों को जीता, जिन्हें वे दस्यु आदि कहते थे। किसी ने दो क्षण ठहरकर यह नहीं सोचा कि आर्यों (?) के अवतार राम और कृष्ण काले थे और तथाकथित द्रविड़-देवता शिव 'कर्पूरगौर' क्यों कहे जाते हैं? उनकी पत्नी पार्वती गौरी क्यों थी?

इन 'आर्यों' का सारा इतिहास 1500 ई.पू. के बाद रखा गया जिसमें वेदों की रचना से लेकर समस्त संस्कृत-साहित्य को ठूँसने की चेष्टा की गयी; क्योंकि कुछ यूरोपीय विद्वानों को ख़्याल था कि भारत का सारा प्राचीन साहित्य एक अलमारी के अन्दर ही समा जायेगा। उन बुद्ध को वास्तविक माना गया, जिन्होंने वेदों के माननेवालों से दुःखी होकर नये पंथ की रचना की थी। लेकिन भारत का वास्तविक इतिहास सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के बाद शुरू होता है। इसे मौर्यकाल कहते हैं। इसके बाद का इतिहास राजवंशों के नाम पर अभिहित किया गया। इसके पूर्व

का इतिहास मृद्भाण्डों के आधार पर स्तरीकृत किया गया है। उत्तर भारत का पुरातत्त्व कालमान इस प्रकार विकृत कर दिया गया है कि अभी तो उसके उद्धार की सम्भावना ही नहीं दिखाई पड़ती है। अयोध्या, काशी, कौशाम्बी, बोधगया, वैशाली आदि स्थल सातवीं-छठी शताब्दी ई.पू. तक पहुँचते-पहुँचते रीते हो जाते हैं जबकि स्वयं बुद्ध को छठी शताब्दी ई.पू. का माना जाता है। इस प्रकार उत्तर भारत के इन स्थानों की सारी सभ्यता और संस्कृति बुद्ध से मात्र एक शताब्दी पुरानी मानी जाती है।

बन्धुओ ! हमारे समाने इस समस्त इतिहास को उसके सत्य रूप में सामने लाने का महत कार्य है। इस इतिहास को किस दृष्टि से देखकर हम प्रकाश में ला सकते हैं, इसकी अत्यन्त संक्षिप्त और सूत्र रूप में हमने चर्चा की है। लेकिन एक बात का हमें निश्चपूर्वक ध्यान रखना पड़ेगा। प्राचीन इतिहास के खोज में हम नवीन वैज्ञानिक खोजों को आँखों से ओझल न होने दें तथा बिना प्रमाण के एक शब्द भी न लिखें। मल्लिनाथ ने हमारा ध्येय-वाक्य निश्चित कर रखा है– **ना मूलं लिख्यते किञ्चित्**।

❖❖❖

तथ्यों की कसौटी पर भारतीय इतिहास

प्रो. रामेश्वरप्रसाद मिश्र 'पंकज' *

विश्वभर में इतिहास को जानने और समझने का एक स्पष्ट प्रयोजन होता है– जो कुछ अपने देश या समाज अथवा विश्व के अन्य देशों और समाजों के साथ घटित हुआ, उसे सत्य और तथ्य रूप में जानना। इस ज्ञान के द्वारा एक तो स्वयम् अपने समाज के स्वभाव का और शक्ति तथा कमज़ोरियों का पता चलता है, दूसरे अन्य समाजों के स्वभाव, शक्ति और कमज़ोरियों का ज्ञान होता है तथा राज्यों और समाजों के मध्य आपसी रिश्तों और टकरावों की प्रकृति का ज्ञान होता है। इसके साथ ही अपनी तथा दूसरों की सैनिक-शक्ति, दक्षता और क्षमता का ज्ञान होता है ताकि अपनी शक्ति में निरन्तर वृद्धि हो सके और दूसरों के समकक्ष टिक सकने का सामर्थ्य बना रहे। अनेक समाज तो सैनिक बल में औरों से आगे रहने के लिए ही यह ज्ञान अर्जित करते हैं।

परन्तु इतिहासलेखन हो या ज्ञान के अन्य रूप हों, इनका प्रामाणिक स्वरूप केवल सुसंस्कृत, ज्ञान-परम्परा से सम्पन्न और परिपक्व समाजों में ही मिलता है। यदि कोई समाज किसी अस्वाभाविक मतवाद या विचार या पंथ के द्वारा रूपान्तरित हो जाता है और ज्ञान तथा व्यवहार के सार्वभौम नियमों को भूल जाता है, तो फिर उसके लिए ज्ञान की प्रत्येक शाखा अपने मतवाद या पंथ या विचार के अतिरञ्जित गौरवगान का माध्यम बन जाती है। तब ऐसे समाजों में सत्य का स्थान गौण हो जाता है और झूठे प्रचार को ही केन्द्र में रखा जाता है।

यूरोप के विषय में प्राचीन ज्ञान नगण्य है; क्योंकि एक तो परिस्थिति और पर्यावरण की दुरूहता के कारण तथा दूसरे तथाकथित मध्ययुग में कतिपय उन्मादपूर्ण आवेगों के कारण प्राचीन की स्मृति वहाँ समाप्त ही हो गयी। 19वीं शताब्दी ईसवी से विश्व के अन्य श्रेष्ठ समाजों के घनिष्ठ सम्पर्क में आने के बाद उनके यहाँ ज्ञान के प्रति तीव्र जिज्ञासा पुनः प्रकट हुई। तब ज्ञान की प्रत्येक शाखा में उनकी प्रतिभाओं ने बहुत परिश्रम किया, परन्तु तब भी अपने अलग-अलग प्रकार के उन्मादों के संस्कार हमें उनकी आधुनिक प्रतिभाओं में भी प्रायः दिख जाते हैं।

उदाहरण के लिए यूरोपीयों के द्वारा लिखे गये भारत या अफ्रीका या अन्य क्षेत्रों के इतिहास का उदाहरण लें। यह तो सर्वविदित है कि आधुनिक इतिहासलेखन यूरोप में पहली बार

* लेखक वरिष्ठ चिन्तक और विचारक हैं।

20वीं शताब्दी ईसवी में ही प्रारम्भ हुआ। तब भी प्रायः हमें यूरोपीय पुस्तकों में यह पढ़ने को मिलता है कि भारत में 16वीं शताब्दी ईसवी में या 10वीं शताब्दी ईसवी में या पहली और दूसरी शताब्दी में या ईसापूर्व की किसी शताब्दी में अमुक-अमुक स्थिति थी, ये राजा थे अथवा सभ्यता का यह स्वरूप था। अब प्रश्न यह उठता है कि ये तथ्य इन यूरोपीय जनों ने कहाँ से जाने?

छठी से 18वीं शताब्दी ईसवी तक तो यूरोपीय क्षेत्रों में ज्ञान अत्यन्त अविकसित स्तर का था। पढ़ाई केवल बाइबिल की ही चल रही थी और वह भी केवल पादरी और राजघराने तक सीमित थी। ये लोग बाहर कहीं जा-आ नहीं रहे थे। पहली बार जो लोग यूरोप के अलग-अलग इलाकों से बाहर निकले, वे अधिकांशतः अनपढ़ और अविकसित लोग थे। उनके पास कोई साधन भी नहीं थे। प्रायः कठोर दमन से घबराकर अथवा महामारियों के दौर से ऊबकर अथवा 'पुअर लॉज़' के द्वारा उत्पीड़ित होकर किसी तरह जान बचाने के लिए या फिर चर्च के उत्पीड़न से पिण्ड छुड़ाने के लिए ये लोग बाहर निकले।

तब तक समस्त यूरोपीय क्षेत्र (जिसका तब तक यूरोप नाम पड़ा ही नहीं था, वह तो 19वीं शताब्दी ईसवी में पहली बार प्रयोग में आया नाम है) भोजन और वस्त्र की कमी से भयंकर पीड़ित था, स्वच्छता के नियमों से आश्चर्यजनक रूप में अनजान था, औषधियों का कोई ज्ञान लगभग नहीं था, अधिकांश ऐसे लोगों के पास पहनने के लिए मुश्किल से एक या दो जोड़ी कुल कपड़े होते थे और खाने के लिए लगभग कुछ भी नहीं होता था सिवाय कच्चा और पका मांस, कुछेक चुकन्दर आदि कन्दों, झरबेरियों और खट्टे फलों तथा जौ के। आलू, गन्ना, चावल, गेहूँ, दालों की जानकारी तो इन्हें लगभग 17वीं शती से होनी शुरू हुई, जो 18वीं शती में कुछ फैली। 19वीं शती ईसवी में ही ये खाद्य-वस्तुएँ यूरोप में पूरी तरह जानकारी में आयीं। हेला देश (ग्रीस) और रोम तो कभी यूरोपीय क्षेत्र थे नहीं। उनका सम्बन्ध सदा कार्थेज (कृतिजा) और भारत में था, अर्थात् अफ्रीका से, मिस्र से और भारत से। रोम और यवन अपेक्षाकृत उष्ण क्षेत्र हैं, जबकि यूरोप बेहद ठण्ढा क्षेत्र है।

पहली बार जब ये लोग अपने-अपने इलाकों से बाहर समुद्र में निकले, तो छोटी-छोटी डोंगियों में निकले। समुद्र से दूर देश जाकर कमाकर या लूटकर कुछ लाएँगे, केवल यही भाव था। ठीक-ठीक कहाँ जाना है, पता नहीं था। क्योंकि नक्शों की कोई जानकारी इन्हें नहीं थी। चीन और भारत से इन्होंने नक्शे पाए और फिर नक्शे बनाना सीखे– 16वीं-17वीं शती ईसवी में। वह भी बहुत अनगढ़ और ग़लत-सलत। ठीक से नक्शे बनाना भी इन्हें 19वीं शती ईसवी में पहली बार आ सका।

इनका साहस अद्वितीय था और कष्ट सहन का इन्हें बहुत लम्बा अनुभव था; क्योंकि चर्च के दमन ने और चर्च की शिक्षा ने इन्हें कष्ट सहन ही सिखाया था। प्रायः ये लोग या तो डबलरोटी के कुछ टुकड़े लेकर निकले, जिनमें फफूंद लगी होती थी– ऐसा वर्णन मिलता है, या फिर वे समुद्र में ही मछलियाँ पकड़कर सीधे उन्हें खा जाते थे या केकड़े आदि खाकर गुजर करते थे। इनके पास कपड़े रखने के बक्से वगैरह भी प्रायः नहीं होते थे। सफ़ाई से तो इनका रिश्ता ही नहीं था और अक्सर इनके शरीर से बहुत बुरी गंध आती थी। लिखना इन्हें आता नहीं था और

अगर किसी एकाध को कुछ लिखना आये भी, तो इनके पास 18वीं शताब्दी ईसवी तक तो काग़ज़ नहीं था, कलम भी नहीं थी। जहाजों का ज्ञान तो उन्हें 19वीं शताब्दी ईसवी में पहली बार भारत तथा अन्य समाजों से हुआ। खुद की भाषा भी अधिक विकसित रूप में नहीं आती थी। फिर दूसरे देशों की भाषा और दूसरे समाजों का ज्ञान तो होने का प्रश्न भी नहीं था।

ऐसे दीन-दरिद्र, दुखी और परिश्रमी परन्तु अन्य समाजों की भाषा, संस्कृति और ज्ञान परम्परा से नितान्त अनभिज्ञ लोगों ने अगर भारत या अफ्रीका के विविध देशों के विषय में कुछ लिखा, तो उसे इतिहास किस आधार पर कहेंगे? वे तो प्रायः लन्तरानियाँ या गप्पें और अंधविश्वास ही होते थे।

आज भी भारत जैसे ज्ञान-परम्परा से समृद्ध देश के भी श्रमिक तथा अन्य कमज़ोर वर्गों के लोग जब जीविका की खोज में बाहर यूरोप या अरब देशों में जाते हैं, तो वे यूरोप के विषय में या अरब देशों के विषय में जो कुछ भी लौटकर बताते हैं, वह कितना प्रामाणिक होता है? यह आज भी देखा जा सकता है।

जबकि भारत-जैसे देशों में तो ग़रीबों और मज़दूरों को यह पता है कि ज्ञान कितनी बड़ी चीज़ है और वे प्रायः वर्णन करते समय बड़ी विनम्रता से यह कहते हैं कि हमने तो यह-यह देखा, पर बाकी आप लोग जानें। क्योंकि उन्हें पता है कि सत्य कितना विराट् होता है और उनकी देखने का सामर्थ्य कितना अल्प है। फिर यूरोप में सभ्यता की दृष्टि से 19वीं शताब्दी ईसवी के प्रारम्भ तक जो अज्ञान और अनपढ़पन है, उसके बाद वहाँ से निकले हुए ग़रीब, कमज़ोर, दुखी, अभावग्रस्त और परिश्रमी लोगों के द्वारा उन देशों के बारे में कही गई बातें वहाँ का इतिहास किस रूप में हो गयीं? स्वयं भारत आदि देशों के जो आधुनिक शिक्षित लोग ऐसे बौद्धिक दृष्टि से नितान्त असमर्थ और अविकसित लोगों के किस्सों को जब अपने ही देश के इतिहास का आधार बनाते हैं, तो वे कितने बड़े मूर्ख और दयनीय दिखते हैं, यह शायद उन्हें पता नहीं, अन्यथा वे शर्म से गड़ ही जाएँ।

बीसवीं शताब्दी ईसवी में अवश्य वहाँ परिश्रमपूर्वक अध्ययन की एक परम्परा पुष्ट हुई, परन्तु कितने लोगों में? और फिर ये लोग भी जब भारत या अफ्रीका या प्राचीन अमेरिका के विषय में कुछ लिखते हैं, तो किस आधार पर? ज़ाहिर है कि वे इन देशों और क्षेत्रों के साहित्यिक साक्ष्य पर ही मुख्य भरोसा करते हैं। परन्तु आख़िर इतने सारे देशों और क्षेत्रों की भाषा का ऐसा सूक्ष्म और सुविकसित ज्ञान इन थोड़े-से लोगों को कैसे हो गया? उनका ज्ञान कितना प्रामाणिक माना जायेगा? जिन साहित्यिक तथा अन्य साक्ष्यों के आधार पर इन देशों का इतिहास वे लोग लिखते हैं, ज़ाहिर है कि स्वयं सम्बन्धित देश के सुशिक्षित और ज्ञानी लोग उन साक्ष्यों के विषय में इन लेखकों से बहुत अधिक जानते हैं। अतः प्रामाणिक इतिहास-ज्ञान तो उन्हें ही होगा जो किसी देश के अपने ज्ञानी हैं।

इन दिनों वाचिक परम्परा का हवाला देकर बहुत कुछ लिखा जाता है, परन्तु किसी समृद्ध समाज की वाचिक परम्परा में तो वाणी की बहुत ही सूक्ष्म और गहरी व्यञ्जनाएँ होती हैं, एक-एक शब्द के गहरे अर्थ होते हैं और उनकी एक अर्थ-परम्परा होती है। विदेश से भारत या

अफ्रीका आकर कैसे आप यहाँ की वाचिक परम्परा के अर्थ ग्रहण कर लेंगे?

अगर इतिहास लेखन के ये ही स्रोत हैं, तो फिर भारत से तो इटली, यवन प्रान्त, अरब, स्पेन, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि तथा विभिन्न अफ्रीकी देशों तक अनेक समृद्ध व्यापारी, राजपुरुष और ज्ञानी पण्डित जाते रहे हैं। उनके वर्णन को क्यों नहीं सम्बन्धित देशों का प्रामाणिक इतिहास माना जाता? ये लोग तो ज्ञान से भी समृद्ध हैं और अनुभव तथा अभिव्यक्ति की शक्ति से भी पुष्ट हैं। परन्तु यूरोप के किसी भी देश का कोई भी आधुनिक व्यक्ति ऐसे भारतीयों या अफ्रीकियों के वर्णन को अपने देश का प्रामाणिक इतिहास नहीं मानता। ऐसे में जो तथाकथित इतिहास ये लोग लिखते हैं, उसकी क़ीमत कितनी है, यह सहज ही समझा जा सकता है।

स्पष्ट है कि भारत के इतिहास के बारे में भारतीय शास्त्र, इतिहास-ग्रन्थ और अन्य ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक साक्ष्य ही प्रमाण हैं। 1960 ईसवी तक अनेक श्रेष्ठ भारतीयों ने इन्हीं आधारों पर भारत का इतिहास भली-भाँति लिखा भी, परन्तु श्री जवाहरलाल नेहरू के संरक्षण में खोखले बौद्धिकों का एक ऐसा ठाठ रचा गया जिन्होंने श्रेष्ठ भारतीय विद्वानों द्वारा रचित ऐसे सम्पूर्ण इतिहास की स्मृति ही समाज के चित्त से पूरी तरह मिटा देने के लिए काम किया।

भारत का प्रामाणिक इतिहास 19वीं शताब्दी ईसवी के अन्तिम चरण और 20वीं शताब्दी ईसवी के पूर्वार्ध में स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री सत्यव्रत सामश्रमी, श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, श्री नन्दलाल दे, श्री रघुनन्दन शर्मा, श्री शिवशंकर काव्यतीर्थ, श्री राजगुरु हेमराज, श्री प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त, श्री सीतानाथ प्रधान, पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, श्री वि. रंगाचार्य, श्री आठवले, श्री उमेशचन्द्र विद्यारत्न, श्री अविनाशचन्द्र दास, श्री नारायणराव भवानराव पावगी, श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य, श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित, पं. युधिष्ठिर मीमांसक, पं. भगवद्दत्त, श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक आदि विद्वानों ने लिखा है। आधुनिक भारतीय इतिहास के विषय में श्री विनायक दामोदर सावरकर ने बहुत ही कम आयु में अद्वितीय प्रतिभा के साथ उन्हें तब तक प्राप्त साक्ष्यों और स्रोतों के आधार पर लिखा है। परन्तु इन सबके इतिहासलेखन को दबाने के लिए अथवा इनसे बेख़बर रहकर अज्ञानियों की एक पूरी पीढ़ी सामने आई दिखती है, जिनके कथनों में कोई भी प्रामाणिक आधार दूर-दूर तक दिखाई नहीं पड़ता।

❖❖❖

भारतवर्ष की इतिहास-दृष्टि

गुंजन अग्रवाल*

इ क्या उद्देश्य क्या है? इतिहास के प्रति दृष्टिकोण क्या होना चाहिए? प्राचीन भारत में इतिहास-लेखन की परम्परा क्या थी? भारतीय-इतिहास का पुनर्लेखन क्यों?– ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो भारतीय समाज में न केवल बुद्धिजीवियों को परेशान कर रहे हैं, बल्कि देश के राजनीतिज्ञ भी इससे भयभीत हैं; और देश का सामान्य व्यक्ति भी कौतूहलपूर्वक इतिहास में चल रही रस्साकशी को देख रहा है।

हमारी मान्यता है कि इतिहास किसी भी राष्ट्र का प्राण है। राष्ट्रात्मा का ज्ञान और राष्ट्र-शरीर का कर्म उसी पर निर्भर है। वह सभ्यता का आधार एवं संस्कृति का प्रधान अंग है। भविष्य के निर्माण में इतिहास का सहयोग अनिवार्य रूप से रहा करता है। इसलिए यदि इतिहास की उपेक्षा की गयी, तो राष्ट्र का पतन अवश्यम्भावी होता है। अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्त विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय (1925-1983) कहा करते थे कि इतिहास एक राष्ट्र के उत्थान-पतन की तथ्यपूर्ण गाथा है। **राष्ट्रस्यचक्षु इतिहासमेतत्,** अर्थात् इतिहास राष्ट्र का चक्षु है, जिसके द्वारा राष्ट्र अपने अतीत को पहचानकर वर्तमान में कर्म के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है तथा श्रेष्ठतर भविष्यत् के निर्माण के लिए साधना करता है।[1] दूसरे शब्दों में, इतिहास उस कालचक्र का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक लेखा-जोखा है, जहाँ एक ओर आनेवाली पीढ़ी अपने पूर्वजों की महानता पर गर्व का अनुभव कर सके, तो दूसरी ओर उस समय की गई ग़लतियों और त्रुटियों का भी यथार्थ विश्लेषण हो, ताकि उनको मिटाकर गौरवशाली भविष्य का निर्माण किया जा सके।[2]

जब तक कोई राष्ट्र अपने इतिहास का चिन्तन करता रहता है, उससे प्रेरणा ग्रहण करता रहता है, तब तक उसकी गति में बाधा नहीं आती। किन्तु जब कोई राष्ट्र अपने इतिहास को भूलता है, उससे कट जाता है; जब वह अपने महापुरुषों की, अपने देश की उपलब्धियों की और अपनी कमज़ोरियों की ठीक मीमांसा नहीं कर सकता, तब वह कभी आगे नहीं बढ़ पाता।[3] संसार के सभी सभ्य राष्ट्र इस तथ्य को भली-भाँति समझते हैं और अपने-अपने इतिहास के सहारे गति

---

* लेखक जाने-माने इतिहासविद् और वरिष्ठ पत्रकार हैं, सम्प्रति महामना मालवीय मिशन, दिल्ली में शोध-सहायक के पद पर कार्यरत हैं।

करते हुए, अपने आचरण के द्वारा, अपने इतिहास-प्रेम को प्रदर्शित करते हैं।

इतिहास की भारतीय संकल्पना :

'इतिहास' केवल शब्द-मात्र नहीं है। वह अपने भीतर एक गूढ़ अर्थ धारण किए हुए है। महाभारत युद्ध (3139-38 ई.पू.) से लगभग दौ सौ वर्ष पश्चात् आचार्य शौनक लिखते हैं :

इतिहासः पुरावृत्त ऋषिभिः परिकीर्त्यते[4]

अर्थात्, इस विषय का इतिहास अथवा पुरावृत्त ऋषियों द्वारा कीर्तित है।

निरुक्त (2.3.1) पर भाष्य करते हुए दुर्गाचार्य 'इतिहास' शब्द पर लिखते हैं :

निदानभूतः ह एवमासीत् इति य उच्यते स इतिहासः[5]

अर्थात्, यह निश्चय से इस प्रकार हुआ था; यह जो कहा गया है, वह इतिहास है।

इस प्रकार 'इतिहास' शब्द इति (इस प्रकार से)+ ह (निश्चयेन) + आस (था)(अस् धातु लिट् लकार अन्य पुरुष तथा एकवचन) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है– निश्चित रूप से ऐसा ही हुआ था। अर्थात् अतीत की घटनाओं की ठीक उसी प्रकार व्याख्या करना जिस प्रकार वे घटित हुई थीं– सच्चा इतिहासवाचन है। कल्पित, अनुमानित और संदिग्ध बातें इतिहास नहीं हैं और न केवल व्यक्तियों के राग, द्वेष, संघर्ष, गुण, अवगुण आदि की व्याख्या ही इतिहास है। इतिहास सत्यान्वेषण है, सत्यानुसन्धान है। इतिहास के इस अर्थ पर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि संसार में भारतवर्ष ही एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ के मनीषियों ने इतिहास के अर्थ और मर्म– दोनों को समझा और अनुभव किया गया था। यही एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ इतिहास की एक अटल परिभाषा दी गई थी–

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥[6]

अर्थात्, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेश सहित तथा प्राचीन कथाओं से युक्त ग्रन्थ को ही 'इतिहास' कहा जाता है।

आर्यादिबहुव्याख्यातं देवर्षिचरिताश्रयम्।
इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भुतधर्मभाक्॥[7]

अर्थात्, ऋषियों द्वारा कहे गए नाना उपदेश, देवताओं तथा ऋषियों के चरित्र तथा अद्भुत धर्म-कथाओंवाला ग्रन्थ 'इतिहास' कहलाता है।

इतिहास का उद्देश्य :

इतिहास की उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास में केवल पूर्वकाल की घटनाओं व तथ्यों का संकलन-मात्र ही नहीं, बल्कि उसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश भी होना चाहिये। किस राजा ने कब युद्ध किया, कौन जीता, कौन हारा; किसने कौन-सा देश अपने अधिकार में कर लिया, सन्-संवत्-समय; केवल इन्हीं बातों को हमारे पूर्वज 'इतिहास'

नहीं कहते थे। जबतक उसमें धर्म और मोक्ष का उपदेश न हो, तब तक पूर्वकथा होने पर भी कोई ग्रन्थ 'इतिहास' नहीं कहलाता था। दुर्योधन, कंसादि राजाओं का प्रजा को पीड़ा पहुँचाने से किस प्रकार नाश हुआ और राजा रघु, राम आदि महात्मा नृपतिगणों ने प्रजापालन में तत्पर होकर कैसी-कैसी सिद्धियाँ प्राप्त कीं; राजा लोग प्रजा को सुरक्षित और सुखी रखने के लिये कैसे-कैसे यत्न करते थे, ये सब विषय इतिहास के अंतर्गत हैं। आश्रमवासी, ऋषिमुनिगण संसार की ममता छोड़कर भी राजा और प्रजा के कल्याण की कामना करते थे। इसी प्रकार प्रजा के पालन व दुष्टों के दमन में धर्म की वृद्धि और अधर्म से नाश स्पष्ट रूप से दिखाना ही इतिहास का प्रधान उद्देश्य है। यशस्वी चरितों का वर्णन ही इतिहास है, जिनसे सच्चे जीवन-मूल्यों की स्थापना होती है।

इतिहास में सम्पूर्ण ज्ञातव्य विषय होने चाहिये। किस राजा के समय में प्रजा की क्या अवस्था थी, राज्य में किस प्रकार वाणिज्य-व्यापार होता था; विद्या की चर्चा, प्रजाजन का सुख, राजा का धन व बल, ज्ञान की वृद्धि और उसी के साथ धर्माचरण और कर्तव्य का उपदेश व अकर्तव्य का निषेध एवं मोक्षधर्म की शिक्षा-प्रणाली इत्यादि विषय इतिहास में होने चाहिये।

'साहित्यदर्पण' (कलकत्ता-संस्करण) में ग्रन्थकार ने सूचित किया है कि 'इतिहास पाठ करने का फल यह है कि पढ़नेवाला व्यक्ति राम आदि की भाँति बर्ताव करने का यत्न करे और रावणादि दुष्टों के चरित्र से घृणा करे और यदि चरित्र वैसा दूषित हो तो उसे छोड़ने का यत्न करे।' स्वामी करपात्रीजी महाराज (1907-1982) ने भी लिखा है कि 'बुरी घटनाओं का वर्णन बुरे कामों से बचने और सावधान करने के लिये होता है तथा अच्छी घटनाओं का वर्णन गुणग्रहण एवं प्रोत्साहन के लिये होता है। इसीलिये रामायण के अध्ययन से यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि राम-भरत आदि के समान बर्तना चाहिये, रावणादि की तरह नहीं। महाभारत पढ़कर यह पाठ सीखना चाहिये के युधिष्ठिर के समान बर्ताव करना चाहिये, दुर्योधन आदि के समान नहीं— **रामादिवद्वर्त्तितव्यंनरावणादिवत्। युधिष्ठिरादिवद् व्यवहर्तव्यं न दुर्योधनादिवत्॥**[8,9] कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक इतिहास के प्राचीन आदर्शों से सबक लेकर यदि वर्तमान शासन-सुधार के लिए हम कोई कदम न उठाएँ, तो इतिहास पढ़ने का और लिखने का लाभ ही क्या? इतिहास इस तरह से लिखा और पढ़ा जाना चाहिए जिससे प्राचीन ग़लतियों से बचा जा सके और अतीत के गौरव का अनुकरण किया जा सके[10], अन्यथा केवल सन् एवं संवत् रट लेने से इतिहास पढ़ने का कोई लाभनहीं।

भारतीय इतिहास के गौरव-ग्रन्थ :

इतिहास की उपर्युक्त परिभाषा और उद्देश्य के अनुसार अष्टादश महापुराण[11], अष्टादश उपपुराण[12] 36 अन्य पुराण-ग्रन्थ[13], रामायण[14] एवं महाभारत[15], ग्रन्थ इतिहास के अंतर्गत हैं; और जितने भी नवीन 'तवारीख़' और 'हिस्ट्री' (History) हैं, जिनमें धर्म और मोक्ष के उपाय वर्णित नहीं हैं, वे 'इतिहास' नहीं कहे जा सकते।

सुसिद्ध दार्शनिक-विचारक श्रीश्रीआनन्दमूर्ति (प्रभात रंजन सरकार : 1921-1990) ने उल्लेख किया है कि आजकल लोग जिसे 'इतिहास' (History) कहते हैं, वह वास्तव में 'इतिकथा' है। इतिकथा है घटनावलियों का क्रमिक समाहार; घटनाओं का क्रमिक पञ्जीकरण,

छिन्न-विच्छिन्न घटनाओं का एक धारावाहिक विवरण। इस पञ्जीकरण से लोक-शिक्षा हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती है। इसका लक्ष्य लोक-शिक्षा नहीं है। भिन्न-भिन्न राजाओं के जन्म और मृत्यु की तिथि कण्ठस्थ करने से किसी का कुछ भी भला नहीं होता, पर सामयिक जीवन की धाराएँ किसी विशेष समय में अथवा जीवन के किसी विशेष पक्ष में समाज किस प्रकार आगे बढ़ा, इसका कुछ ज्ञान 'इतिकथा' से अवश्य हो जाता है। इतिकथा के अध्ययन से पुराकालीन सामाजिक अवस्था के बारे में जाना जा सकता है, वर्तमान से उसकी तुलना की जा सकती है। संस्कृत में इतिकथा के अनेक पर्यायवाची शब्द हैं, जैसे– 'पुराकथा', 'इतिवृत्त' इत्यादि। परन्तु अंग्रेज़ी में इसके लिए केवल एक ही शब्द है– History (हिस्ट्री)।[16]

'इतिहास' इतिकथा का सोद्देश्य विकसित रूप है। इतिकथालेखन के जिस रूप में शिक्षागत मूल्य सन्निहित हो, उसे ही इतिहास कहते हैं। स्कूल-कॉलेज़ों के पाठ्यक्रमों में जो 'भारत का इतिहास', 'ब्रिटेन का इतिहास', 'यूरोप का इतिहास' कहकर पढ़ाया जा रहा है, वह वास्तव में इतिकथा है, इतिहास नहीं। इतिकथात्मक सारी रचनाएँ 'इतिहास' नहीं हैं। इतिहासलेखन सोद्देश्य होता है, जबकि इतिकथा प्रामाणिक पञ्जीकरण-मात्र होती है।[17] यह उद्देश्य ऊपर बताया जा चुका है।

पुराण भारत के इतिहास-ग्रन्थ हैं :

इतिहास एवं पुराण– इन दोनों शब्दों से इतिहास का ही बोध होता है। अर्थात् इतिहास एवं पुराण परस्पर पर्यायवाची हैं। परन्तु प्रायः अपने देश के तथाकथित दिग्गज विद्वान् पुराणों का अर्थ अंग्रेज़ी के 'माइथोलॉज़ी' (Mythology) के हिंदी-अनुवाद के रूप में स्वीकार करते हैं। 'माइथोलॉज़ी' शब्द 'मिथ' (Myth) से बना है। और 'मिथ' का अर्थ है 'मिथ्या' अर्थात् जिसका कोई अस्तित्व न हो। इस कार समस्त पौराणिक साहित्य को 'माइथोलॉज़ी' अर्थात् 'मिथ्या', अर्थात् काल्पनिक घोषित करके हमारे प्राचीन इतिहास को मानो हवा में उड़ा दिया गया है।

परन्तु हमारी मान्यता है कि हमारे पुराण हमारा इतिहास हैं। यह सत्य है कि वे हमारा काव्य भी हैं। काव्य में कल्पना का समावेश अवश्य होता है, किन्तु हमारा पौराणिक काव्य इतिहासाश्रित है, उसमें काव्यात्मक कल्पना का मिश्रण नहीं हुआ है। पौराणिक-साहित्य में स्थान-स्थान पर इतिहास को पुराण से सम्बद्ध किया गया है–

इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा[18]
इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या द्विजोत्तमाः[19]
इतिहासपुराणाभ्यां न त्वन्यत् पावनं नृणाम्[20]
इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्तया विशेषतः[21]
इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः[22]
सूतं जग्राह शिष्यं स इतिहासपुराणयो[23]
इतिहासपुराणे च तथा व्याकरणं प्रभो[24]
इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदांगपरम्[25]

इतिहास पुराणं च वेदांश्चैव विचक्षणः[26]

इतिहासपुराणानि वाचयित्वातिवाहयेत्[27]

इतिहासपुराणाभ्यां कञ्चित्कालं नसेद् बुधः[28]

इतिहासपुराणानि कल्पोऽहं कल्पना ह्ययम्29

इतिहासपुराणादि शिवपुस्तकवाचनम्[30]

केवल पुराणों में ही नहीं, अपितु अन्यान्य आर्ष-ग्रन्थों में भी इतिहास को पुराण एवं पुराण को इतिहास ही कहा गया है। वेदों में कहा गया है–

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्चनाराशंसीश्चानुव्यचलन्[31]

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां, च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति च एव वेद[32]

इतिहासपुराणम्[33]

इतिहासपुराणं च[34]

इतिहासपुराणं गाथा नाराशंसीरित्यहरहः स्वाध्यायमधीते[35]

इतिहासपुराणं पुष्पम्[36]

ते वा एतेऽथर्वांगिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपँस्तस्याभितप्तस्य[37]

चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्[38]

इतिहासपुराणः पंचमो वेदानां वेदः[39]

स्मृतियों में कहा गया है–

इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठश्च सप्तमं नयेत्[40]

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्[41]

इतिहासपुराणं वा कथयेच्छृणुयाच्च वा[42]

इतिहासपुराणाभ्यां गीतवाद्यैः बन्धकैः[43]

इतिहासपुराणानि सर्वतः परिपूजयेत्[44]

इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विज[45]

इतिहासपुराणानि स भवेद्वेदपारगः[46]

महाभारत में कहा गया है–

इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्[47]

इतिहासपुराणेषु नानाशिक्षासुचाभिभो[48]

इतिहासपुराणार्थं कात्स्नर्येन विदितास्तव[49]

अन्यत्र कहा गया है–

प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेन इतिहासपुराणानां प्रामाण्यमनुज्ञायते[50]

वेदागमपुराणेतिहास शास्त्रादयोऽखिलाः[51]

तस्मात् समूलमितिहासपुराणम्[52]

इतना ही नहीं, भविष्यमहापुराण में तो एक जगह स्पष्ट रूप से अंकित है कि अष्टादश महापुराण इतिहास ही हैं–

अष्टादश पुराणानि सेतिहासानि भारत[53]

राजशेखर ने भी पुराणों को रूपांतर से इतिहास ही माना है–

पुराण विभेद एवेतिहासः। (काव्यमीमांसा)

कौटिल्य (16वीं शताब्दी ई०पू०) के अनुसार पुराण, आख्यायिका, उदाहरणमीमांसा, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र– इन्हें 'इतिहास' ही समझना चाहिए–

पुराणमितिवृत्तमाख्यादिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रंचेतीहासः[54]

कौटिल्य ने भी इतिहास को पुराणों से संबद्ध किया है–

इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेऽर्थशास्त्रवित्[55]

कुछ विद्वानों को भ्रम है कि जिस प्रकार बाइबल, कुरआन, अवेस्ता आदि धर्मग्रन्थ हैं, उसी प्रकार पुराण भी हिंदुओं के धर्मग्रन्थ हैं। लेकिन यह बात भी सही नहीं[56]; क्योंकि पुराणों में धर्मशास्त्रों को पुराणों से भिन्न बताया गया है–

अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः।
अर्थशास्त्रं चतुर्थं विद्या ह्यष्टादशैव ताः॥[57]

अर्थात्, 6 वेदांग[58], 4 वेद, मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र– ये 18 विद्याएँ हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी लिखा है–

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥[59]

अर्थात्, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र और शिक्षा; कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद– ये 14 विद्याएँ तथा धर्म के स्थान हैं।

उपर्युक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि धर्मशास्त्र और पुराण (इतिहास) अलग-अलग विद्याएँ हैं। इसलिए पुराण धर्मशास्त्र या धर्मग्रन्थ नहीं हैं। गोस्वामी तुलसीदास (1497-1623) ने रामकथा पर आधारित 'श्रीरामचरिमानस' की रचना भारतीय इतिहास को पुनर्जीवित करने के लिए नहीं, बल्कि धर्म को जाग्रत् करने के लिए की, इसलिए श्रीरामचरितमानस एक धार्मिक ग्रन्थ

है। परन्तु पुराणों की रचना धर्म के जागरण के लिए नहीं, बल्कि इतिहास के निरूपण हेतु की गयी, इसलिए पुराण ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं।[60]

पुराण सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित– इन पाँच लक्षणों से युक्त होते हैं, इसलिए भी वे ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥[61]

आज के विद्वान् यह नहीं समझते या समझना नहीं चाहते कि पुराणों का इतिहास देवलोक एवं पृथिवीलोक का सम्मिलित इतिहास है। प्राचीन सत्ययुग से द्वापर के अन्त तक भारतवासियों का देवलोक से प्रत्यक्ष सम्पर्क था। देवता यहाँ पधारते थे और मनुष्य देवलोक की सशरीर यात्रा करते थे। फलतः पुराणों में देवलोक और पृथिवीलोक का मिला-जुला वर्णन है। इस भेद को न समझकर और पूरा इतिहास पृथिवी का मानकर ये इतिहासकार देवताओं को भी पृथिवी का राजा या व्यक्तिविशेष मानने का यत्न करते हैं और घटनाक्रम का समाधान न पाकर पुराणों को 'माइथोलॉज़ी' ठहराने लगते हैं। आज का मानव वीर्यहीन, बलहीन, संकल्पहीन हो गया है। वह देवलोक की स्थिति को नहीं समझ पाता। किन्तु हमारे महान् पूर्वज केवल पाँच हज़ार वर्ष पूर्व तक देवलोक के प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहे हैं। पुराणों के इतिहास को यह समझकर ही देखने से ठीक तात्पर्य ज्ञात होगा।

इतिहास के सम्बन्ध में पुराणों की दीर्घकालीन तपस्याएँ, दीर्घायु, दीर्घाकृतियाँ, विशाल संख्याएँ भी विद्वानों को उलझन में डालती हैं। दीर्घायु के संबंध में तो कुछ कहना ही नहीं है। मनुष्य उत्तरोत्तर अल्पजीवी होता जा रहा है। समाचार-पत्रों में नौ, दस तथा पाँच वर्ष की लड़कियों के सन्तान होने की बात छप चुकी है। आज भी सवा सौ-डेढ़ सौ वर्ष के व्यक्ति जीवित हैं और तब भी साठ-सत्तर वर्ष की आयु लम्बी मानी जाती है। जब सौ-पचास वर्षों में यह स्थिति है, तब लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व– सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में क्या स्थिति रही होगी, इसका श्रद्धापूर्वक अनुमान तो लगाया ही जा सकता है! किन्तु ह्रास होता है, यह देखकर भी कुतर्क करनेवाले को संतुष्ट नहीं किया जा सकता। आकृति के सम्बन्ध में भी यही बात है। विज्ञान यह स्पष्ट कहता है कि मनुष्य के आकार में, बल में ह्रास हो रहा है। अमेरिकी-जेनेटिक-विज्ञानी जॉन ग्लैड (John Glad) ने अपनी पुस्तक 'फ़्यूचर ह्यूमन इवॉल्यूशन : यूज़ेनिक्स इन द ट्वंटी-फ़र्स्ट सेंचुरी' *(Future human evolution: eugenics in the twenty-first century)*[62] में लिखा है कि 'आँकड़े गवाह हैं कि मनुष्य की औसत ऊँचाई घट रही है।' यूरोप में प्राचीन मनुष्यों की जो खोपड़ियाँ मिली हैं, वे आज के मनुष्य की खोपड़ी से लगभग ढाई गुनी बड़ी हैं। मिश्र में राजाओं के सुरक्षित शव (ममी) मिले हैं। दिल्ली के पास ही एक मानव-खोपड़ी मिली थी, जिसके नेत्रों के छिद्रों से आज के मानव का सिर सरलता से निकल सकता था। अतः पुरानी दीर्घाकृतियाँ हमारी समझ में भले न आएँ, किन्तु बुद्धि के बाहर की नहीं हैं। उनकी सत्यता का अनुमान किया जा सकता है।[63]

एक महत्त्वपूर्ण बात और भी है कि क्या हमारे वे महान् पूर्वज, जिन्होंने भारत को

जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित किया, झूठ लिखते थे? जिन पूर्वजों ने सदा-सर्वदा सत्य का ही पक्ष लिया, सत्य को ही उद्घाटित और प्रतिष्ठित किया, सत्य की ही रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग किया, सत्य ही जिनके लिए सबकुछ था, **सत्यमेवजयति नानृतम्**[64], **सत्यं वद**[65] , और **सत्यं ब्रूयात्**[66] ही जिनका ध्येय-वाक्य था, ऐसे महान् पूर्वजों ने बुद्धिविलास के लिए झूठ लिखा? केवल 'सत्य' की रट लगानेवाले व्यास, वाल्मीकि, भृगु, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, जैमिनि, पराशर, गौतम, वैशम्पायन आदि ने झूठ लिखा? क्या से महर्षिवृन्द झूठे, मक्कार थे? नहीं! कदापि नहीं!! यदि पुराण 'माइथोलॉजी' हैं, रामायण और महाभारत काल्पनिक उपन्यास हैं, तो दुनिया की तमाम पुस्तकें माइथोलॉजी अर्थात् काल्पनिक हैं– ऐसा हमारा मत है।

प्राचीन मुसलमान-लेखक सम्भव और असम्भव– सभी विषयों को एकत्र करके अपना ग्रन्थ लिखते थे। जिस बादशाह के समय में इतिहासकार विद्यमान होता था, इतिहासकार उस बादशाह की बड़ी प्रशंसा और उसके शत्रुओं की व्यर्थ निन्दा लिखता था। वह यदि ऐसा न लिखता तो उसका बनाया हुआ ग्रन्थ बादशाह की आज्ञा से नष्ट कर दिया जाता। सम्पूर्ण विषय जानकर यथार्थ लिखना मुस्लिम लेखकों को आता ही नहीं था। विशेषकर अन्य मतावलम्बियों के विषय में जानना तो और भी कठिन था एवम् उस बात पर उस समय के इतिहासकार ध्यान भी नहीं देते थे। मुसलमान-बादशाह या भारतवर्ष पर आक्रमण करनेवाले विजेता, हिंदुओं के मन्दिर तोड़ते और नष्ट कर देते थे; बस इतिहासकारों ने यह लिख दिया कि 'काफिरों का नारकीय स्थान तोड़ दिया।' उन चाटुकार इतिहासकारों ने यह भी जानने की कोशिश नहीं की कि उस मन्दिर में कौन-से देवता की मूर्ति कितनी प्राचीन थी या किस राजा अथवा धनी का बनवाया हुआ मन्दिर था। ऐसी तमाम विसंगतियाँ प्राचीन और मध्यकालीन मुस्लिम-लेखकों की पुस्तकों में भरी पड़ी हैं; और फिर भी उन्हें 'ऐतिहासिक ग्रन्थ' माना जाता है। ऐसी स्थिति में, जबकि मुस्लिम-लेखकों की पुस्तकें स्वयं में माइथोलॉजी हैं, और जिनके आधार पर भारतवर्ष का इतिहास निश्चित किया जा रहा है, हमारे पुराणेतिहास को माइथोलॉजी ठहराना कहाँ तक युक्तिसंगत है, जबकि विलियम ज़ोन्स (William Jones : 1746-1794), हेनरी थॉमस कोलब्रुक़ (Henry Thomas Colebrooke : 1765-1837), कर्नल ज़ेम्स टॉड (Colonel James Tod : 1782-1835), रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर (1837-1925), विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ Vincent Arthur Smith : 1843-1920), फ्रेडरिक ईडन पार्ज़ीटर (Frederick Eden Pargiter : 1852-1927), महामहोपाध्याय डॉ० हरसाद शास्त्री (1853-1931), एडवर्ड ज़ेम्स रैप्सन (Edward James Rapson : 1861-1937), देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर (1875-1950), काशीसाद जायसवाल (1881-1937), अनन्त सदाशिव अल्तेकर (1889-1959), हेमचन्द्रराय चौधरी (1892-1957), जयचन्द्र विद्यालंकार (1899-1963), सीतानाथ प्रधान, रंगाचार्य आदि ने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थों, समीक्षाओं, शोध-प्रबन्धों और लेखों में पौराणिक सामग्री का भरपूर उपयोग किया है!

संस्कृत-साहित्येतिहासकार एम्. कृष्णमाचार्य ने भी लिखा है : 'भारत का अपना भली-भाँति लिखा इतिहास है और पुराण उस इतिहास तथा तिथिक्रम का दिग्दर्शन कराते हैं।

पुराण पवित्र धोखापट्टी नहीं हैं।'[67] प्रख्यात इतिहास-संशोधक पुरुषोत्तम नागेश ओक (1917-2007) लिखते हैं : 'भारतीय-पुराणों को ढोंग की संज्ञा देना या ऐसा समझते हुए एथेन्स, कैण्डी, लन्दन या टोक्यो से प्राचीन भारतीय-ऐतिहासिक कालक्रम को निश्चित करने का यत्न करना, अधिक-से-अधिक भारतीय इतिहास के प्रति भैंगापन ही कहा जा सकता है।'[68] डॉ. विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ को स्वीकार करना पड़ा है कि 'पुराणों में दी गई राजवंशावलियों की आधारभूतता को आधुनिक यूरोपीय लेखकों ने अकारण ही निन्दित किया है; इनके सूक्ष्म अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इनमें अत्यधिक मौलिक व मूल्यवान् ऐतिहासिक परम्परा उपलब्ध होती है।'[69] प्रख्यात मार्क्सवादी लेखक डॉ. रामविलास शर्मा (1912-2000) ने मार्क्सवादी-दृष्टि से भारतीय सन्दर्भों का मूल्यांकन अवश्य किया है, किन्तु उन्होंने भी स्वीकार किया है कि भाषा और साहित्य तथा चिन्तन की दृष्टि से भारत एक अत्यन्त प्राचीन राष्ट्र है। उन्होंने अंग्रेज़ों द्वारा लिखे और लिखवाए गए भारतीय इतिहास को एक षड्यन्त्र माना है। उन्होंने लिखा है कि यदि भारत के इतिहास का सही-सही मूल्यांकन करना है तो हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करना होगा। अंग्रेज़ों ने जान-बूझकर भारतीय इतिहास को नष्ट किया है। ऐसा करके ही वे इस महान् राष्ट्र पर राज कर सकते थे। भारत में व्याप्त जाति, धर्म के अलगाव का जितना गहरा प्रकटीकरण अंग्रेज़ों के आने के बाद होता है, उतना गहरा भाव पहले के इतिहास में मौजूद नहीं है। एडवर्ड पोकॉक (Edward Pococke : 1604–1691) ने लिखा है:'पुराणों में वर्णित तथ्य, परम्पराएँ और संस्थाएँ क्या किसी दिन स्थापित हो सकती हैं? अरे भाई, ईसवी सन् से तीन सौ वर्ष पूर्व भी उनका अस्तित्व पाया जाता है, जिससे वह बहुत प्राचीन लगते हैं, इतने प्राचीन कि उनकी बराबरी अन्य कोई भी प्रणाली कर ही नहीं सकती।'[70]

भारत का पौराणिक इतिहास संवाददाताओं के तार, टेलिप्रिंटर या समाचार-पत्रों के आधार पर या अटकलों के आधार पर नहीं बना; और न किसी मूर्ति, शिलालेख, स्तम्भों अथवा मुद्राओं के आधार पर ही बना है। रामायण, महाभारतादि आर्ष इतिहास के लेखक वाल्मीकि, व्यास आदि ऋषिजन समाधिजन्य ऋतम्भरा-प्रज्ञा के अनुसार घटनाओं को पूर्णतया जानकर ही इतिहास लिखने में संलग्न हुए थे। उन्होंने जो भी दिव्य-दृष्टि से देखा, वही लिखा। योग से ऐसा होना असम्भव नहीं; इसलिये अधूरी, भ्रान्तिपूर्ण खोजों के आधार पर पुराणों के किसी नियम को ग़लत नहीं ठहराया जा सकता, और वो भी ऐसी स्थिति में जब उनके वर्णन क्रमशः सत्य सिद्ध होते जा रहे हैं। पुराण दिव्य, अपौरुषेय और ईश्वरीय ज्ञान हैं। वे ही हिंदू-संस्कृति के प्रेरक, पोषक और भण्डार हैं। उनमें न तो विकृति आई है और न उनकी कोई बात कोरी कल्पना ही है। पुराणों के वर्णन जहाँ रूपक हैं, वहाँ उन्हें स्पष्ट रूप से रूपक बता दिया गया है, जैसे भागवतमहापुराण का 'पुरञ्जनोपाख्यान'। शेष वर्णन अक्षरशः सत्य हैं। वे रूपक नहीं हैं।

पुराणेतिहास में अनेक ऋषियों या प्रधान पुरुषों की चरित-सम्बन्धी त्रुटियों के वर्णन हैं। ऐसी त्रुटियों के न करने का कहीं आदेश तो है नहीं; लेकिन सत्य को छिपाया भी नहीं गया है। इस सम्बन्ध में साधारण दृष्टि और महापुरुषों की दृष्टि में ही अन्तर होता है। महापुरुषों का दृष्टिकोण होता है कि उनकी त्रुटियाँ प्रकट हो जाने से समाज सावधान होगा। लोग समझ लेंगे कि इतनी उच्च

स्थिति में भी ऐसे विकार आ सकते हैं; वे प्रमाद नहीं करेंगे। पुराणों में महर्षियों ने इसी दृष्टिकोण से त्रुटियों को छिपाया नहीं है। यदि राम केवल काल्पनिक आदर्शमात्र होते तो वाल्मीकि उनके चरित्र को रामायण के आदि से अन्त तक निष्कलंक ही रखते, छल से बालि-वध जैसी घटनाओं को कभी न लाते। वाल्मीकीयरामायण को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि कथानक की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में आदिकवि को कोई सन्देह न था।

पुराणों की कालगणना :

पुराणों में घटनाक्रम की कालबद्ध चर्चा परार्ध, कल्प, मन्वन्तर, युग और संवत्सर में की गई है। परार्ध, कल्प, मन्वन्तर, युग और संवत्सर का योग भारतभर के हिंदू और संसारभर में फैले प्रवासी हिंदू अपने दैनिक जीवन में 'संकल्प पाठ' के अंतर्गत करते हैं। किसी भी धार्मिक कृत्य को करने से पूर्व हाथ में पुष्प, जल और अक्षत लेकर संकल्प पाठ किया जाता है। उसमें स्वकुल के इतिहास का और सारे विश्व के इतिहास का संक्षेप में उच्चारण किया जाता है। प्रत्येक धार्मिक कृत्य में सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अबतक के इतिहास का पूरा ब्यौरा संक्षप में दुहराते रहने की यह वैदिक प्रथा इस बात का प्रमाण नहीं कि भारतीय लोग अपने इतिहास के प्रति कितने जागरूक थे? सारे इतिहासक्रम को सारे लोगों के मन में सदैव जीवित रखनेवाली यह था पूरे विश्व में बेजोड़ है। क्या इस तथ्य से यह सिद्ध नहीं होता कि प्राचीन भारत में इतिहासविद्या अपने चरम पर थी? 'संकल्प पाठ' में कहा जाता है– **...श्री ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तकदेशांतर्गते ब्रह्मावर्तैकपुण्यप्रदेशे बौद्धावतारे वर्तमाने यथानाम संवत्सरे कलियुगाब्दे........ वैक्रमाब्दे.......... शालिवाहन शके............ अमुकायने महामांगल्यप्रदे मासोत्तमे अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरान्वितायाम् अमुकनक्षत्रे...।**[71], अर्थात् ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध के श्वेतवाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के 28वें कलियुग के प्रथम चरण में विक्रम संवत् ...... और शालिवाहन संवत् ...... में जम्बूद्वीप के भारतवर्ष के भरतखण्ड के आर्यावर्त के अंतर्गत ब्रह्मावर्त नामक पुण्यप्रदेश में, जब (अन्तिम बार) भगवान् बुद्ध का अवतार हुआ था; अमुक संवत्सर के अमुक अयन के अमुक मास के अमुक पक्ष में अमुक तिथि को अमुक वार को और अमुक नक्षत्र में ....अमुक कार्य हेतु मैं संकल्प कर रहा हूँ।

यही है हमारी परम्परागत कालगणना। पुराण इसी कालगणना के अंतर्गत तथ्यों का विवरण देते हैं। इस कालगणना के अनुसार ब्रह्माण्ड की कुल आयु 31,10,40,00,00,00,000 वर्षों में से 15,55,21,97,29,49,120 वर्ष और मानव-सृष्टि की कुल आयु 4,32,00,00,000 वर्ष में से 1,97,29,49,120 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। कॉस्मोलॉजी में हुई नयी खोज से भी पृथिवी की आयु लगभग दो अरब वर्ष ज्ञात हुई है। भारतीय वैज्ञानिक सुब्रह्मण्यम चन्द्रशेखर (1910-1994) ने भी गणना करके बताया है कि पृथिवी की आयु लगभग दो अरब वर्ष है। सर जे जींस (1877-1946) ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में 'आश्चर्यजनक सृष्टि' विषय पर अपने व्याख्यान में बताया है कि सृष्टि को प्रारम्भ हुए लगभग दो

अरब वर्ष बीते हैं। पौराणिक कालगणना और आधुनिक विज्ञान के आँकड़ों का यह मेल कितना विलक्षण है !

सृष्टि की कुल आयु (4,32,00,00,000 वर्ष) को एक 'कल्प' कहते हैं। यह ब्रह्मा के एक दिन के बराबर होता है। दो कल्पों से ब्रह्मा का एक दिवस (अहोरात्र) बनता है। एक कल्प में सूर्य 14 बार आकाशगंगा की परिक्रमा करता है। इसलिये एक कल्प में 14 'मन्वन्तर' कहे गए हैं। 14 मन्वन्तरों में 1,000 'चतुर्युग' होते हैं। एक चतुर्युग 43,20,000 वर्षों का होता है: सत्ययुग 17,28,000 वर्ष+त्रेतायुग 12,96,000 वर्ष+द्वापरयुग 8,64,000 वर्ष+कलियुग 4,32,000 वर्ष। ऋग्वेद की अक्षर-संख्या भी 4,32,000 है–

स चो व्यौहत्। द्वादश बृहती सहस्राणि एतावत्यो हर्च्यो या प्रजापतिसृष्टाः।[72]

अर्थात्, ऋक्पदों को सञ्चित करके प्रजापति ने व्यूह बनाया। उसमें बारह बृहती सहस्र अक्षर लगे। बृहती छंद = 36 अक्षर। इसलिये 36× 12× 100 =4,32,000 ऋक्-अक्षर।

सत्ययुग = 4 कलियुग; त्रेतायुग = 3 कलियुग; द्वापरयुग = 2 कलियुग। इस प्रकार 10 कलियुग का एक चतुर्युग हुआ। इसी को सहस्र गुणित (सहस्रशीर्षा-पुरुषसूक्त) करने से एक कल्प बनता है। यही सृष्टि है। इसी तरह प्रलय भी एक कल्प के बराबर ही होता है। द गिनीज़ बुक ऑफ़ वर्ल्ड रिकॉर्ड *(The Guinness Book of World Records)* ने कल्प को समय का सर्वाधिक लम्बा मापन घोषित किया है।[73] हमारी यह कालगणना तथाकथित इतिहासकारों की कालगणना की तुलना में बहुत अधिक प्राचीन है।

पुराणों के रचयिता और रचनाकाल :

काशीकेदारमाहात्म्य में कहा गया है कि वेद, आगम, पुराणेतिहास आदि सभी युगों के अनुसार अनादि हैं, भगवान् के श्वासरूप हैं। कभी वे मलीन, कभी विशद होते हैं और वे भगवान् की प्रपञ्च-लीला का वर्णन करते हैं। उनमें भूत, भविष्य तथा वर्तमान का वर्णन होता है, अतः उनमें शंका नहीं करनी चाहिये–

वेदागमपुराणेतिहासशास्त्रादयोऽखिलाः।
अनादयः परेशस्य निःश्वासा ह्यञ्जसा स्थिराः॥
कदाचित्कालपाकेन मलिना विशदा अपि।
शाश्वतो भगवान् शम्भुः कल्पे कल्पे स्वयंभुः॥
पञ्चाख्यां महालीलां निर्गुणोऽपि करोति च।
या कृता तेन वै लीला तां शास्त्राणि वदन्ति हि॥[74]
तस्मादभूद् भविष्यच्च वर्तमानमपि द्विजाः।
वदन्ति सूक्ष्मं शास्त्राणि तेषु शंकां न कारयेत्॥[75]

अन्यत्र कहा गया है–

स यथौंधाग्निेभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य

निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोःऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषद्ः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानी।[76]

अर्थात्, जैसे गीली लकड़ी में अग्नि लगाने से धुआँ निकलता है, उसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वांगिरस, पुराणेतिहास, विद्या (धनुर्वेदादि), उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण तथा अर्थवाद– वे इस महद्भूत (परमात्मा) के ही निःश्वास हैं।

उपर्युक्त श्लोक में ही श्रुति ने पुराणादि समस्त शास्त्रों को अपौरुषेय, अनादि बतलाया है। यह ईश्वरीय ज्ञान ब्रह्माजी को मिला। उनसे–

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः। सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥[77]

अर्थात्, इतिहास-पुराणरूपी पाँचवें वेद को उन समर्थ, सर्वज्ञ ब्रह्माजा ने अपने सभी मुखों से प्रकट किया।

उपर्युक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि पुराण भी अनादि ईश्वरीय ज्ञान ही हैं। वेदों की ही भाँति पुराणों की भी परम्परा प्राप्त होती है और सौ करोड़ श्लोकोंवाला एक ही मूल पुराण अधिकारी-भेद से शाखा-भेद में विस्तृत हुआ, यह भी पुराणों से ज्ञात होता है। महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास (33वीं शताब्दी ई.पू.) ने पुराणों की नवीन रचना नहीं की। उन्होंने सृष्टि के प्रारम्भ से चले आ रहे सौ करोड़ श्लोकोंवाले पुराण को संक्षिप्त करके चार लाख श्लोकों के रूप में स्थापित किया। इन्हीं चार लाख श्लोकों को 18 पुराणों में विभक्त करके इस भूलोक में प्रचारित किया। आज जो पुराण प्राप्त हैं, वे पिछले द्वापर के अन्त में महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास द्वारा व्यवस्थित किए हुए पुराण हैं।[78] इस प्रकार प्रत्येक द्वापर से पुराण व्यवस्थित होते आए हैं। स्वयं ब्रह्माजी ने व्यास के रूप में प्रत्येक द्वापर में पुराणों का संग्रह किया है–

व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे। चतुर्लक्ष प्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ॥[79]

वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के 28 चतुर्युगों के द्वापर में हुए व्यासों की सूची विष्णुपुराण[80] में दी हुई है। व्यास-परम्परा ने पुराणों को व्यवस्थितभर किया है; परन्तु पुराणों का समस्त वर्णन, पूरे उपदेश तथा घटनाएँ अनादि हैं। इस प्रकार पुराणों की वाणी तो व्यासकृत है; किन्तु उनका वर्णन, ज्ञानादि अपौरुषेय है, नित्य है।[81]

वेदों का रचनाकाल :

आज के तथाकथित विद्वान् पुराणों को 'धर्मग्रन्थ' अथवा माइथॉलॉज़ी एवं वेदों को 'ऐतिहासिक ग्रन्थ' के रूप में निरूपित करते हैं।[82] वेदों में से इतिहास ढूँढ़ निकालने का सिद्धान्त हमने पश्चिम से उधार लिया है। अर्थात् पश्चिम ने वेदों में देवतावाद, इतिहास, आख्यायिका-विकास, भाषाविज्ञान आदि अध्ययन के विषय हमें दान किए हैं। ऋग्वेद के समय के भारत तथा उसकी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति को लेकर जो हज़ारों ग्रन्थ पिछले सौ वर्षों में लिखे गए हैं, उनके निर्देशक पाश्चात्य इतिहासकार ही हैं। उन्हीं की शैली का अन्धानुकरणकर भारत के आधुनिक विद्वान् इतिहासलेखन के कार्य में जुटे हुए हैं। प्रत्येक मण्डल का सम्बन्ध एक-एक

ऋषि-परिवार से बताकर तथा उन परिवारों की भौगोलिक स्थिति का निर्णय करके वे वेदों को ऐतिहासिक साँचे में ढालने का प्रयास कर रहे हैं, जबकि 'वेद अपौरुषेय हैं, उनमें एक अक्षर भी इतिहास नहीं है। उनका मनुष्यकृत होना भारतवर्ष को स्वीकार्य नहीं है। सबकुछ अतिमानवी है। उसमें उस काल की, जिसे इतिहास तिथिक्रम से नापा जा सके, गंध भी नहीं है'– यही सिद्धान्त विशुद्ध भारतीय है। यही प्राचीन भारत की विचारशैली है। भूत का निराकरण करनेवालों ने वेद का कर्तृत्व ब्रह्मा या ब्रह्म को सौंप दिया है। ऋषियों का नाम जहाँ आया है, वहाँ उनका कर्तृत्व बताने के लिए नहीं; क्योंकि मंत्रों की रचना करनेवाले को 'ऋषि' नहीं कहते। ऋषि वे हैं, जो मंत्रों का दर्शनमात्र करते हैं।[83] यास्काचार्य ने भी स्पष्ट लिखा है–

ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान्ददर्शेत्यौपमन्यवः। तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् तदृषीणामृषित्वम्।[84]

अर्थात्, वेदों में युक्त स्तुति आदि विषयक मन्त्रों के वास्तविक अर्थ का साक्षात्कार करनेवाले को ही 'ऋषि' के नाम से पुकारा जाता है। तपस्या या ध्यान करते हुए जो इन्हें स्वयम्भू नित्यवेद के अर्थ का ज्ञान हुआ, इसलिए वे 'ऋषि' कहलाए और वेदमन्त्रों का रहस्यसहित अर्थदर्शन ही उनका ऋषित्व है।

जैमिनीयन्यायमाला (माधवाचार्यकृत) वेदापौरुषेयत्वाधिकरण में उत्तरपक्ष इस कार है–

पौरुषेयं न वा वेदवाक्यं स्यात्पौरुषेयता।
काठकादि समाख्यानाद्वाक्यत्वाच्चान्यवाक्यवत्॥
समाख्याध्यापकत्वेन वाक्यत्वं तु पराहतम्।
तत्कर्त्रनुपलम्भेन स्यात्ततोऽपौरुषेयता॥[85]

अध्ययनसंदायवर्तकत्वेन समाख्योपद्यते। कालिदासादिग्रन्थेषु तत्तत्सर्गावसाने कर्तार उपलभ्यन्ते। तथा वेदस्यापि पौरुषेयत्वे तत्कर्तोपलभ्येत न चोपलभ्यते। अतो वाक्यत्वहेतुः तिकूलतर्कपराहतः। तस्मादपौरुषेयोः वेदः। तथा साति पुरुषवृद्धिदोषकृतस्याामाणस्यनाशानां कनीयत्वाद्विधिवाक्य धर्मे प्रामाण्यं सुस्थितम्।

तैत्तिरीयारण्यक की व्याख्या में भट्ट भास्कर ने लिखा है–

अथ नम ऋषिभ्य मंत्रकृदिभ्यो द्रष्टुभ्यः। दर्शनमेव कर्तव्यम्।[86]

मनुस्मृति की व्याख्या में कुलार्क भट्ट ने लिखा है–

ब्रह्माद्या ऋषिपरियन्ता स्मारकाः, न कारकाः।

अर्थात्, ब्रह्मा से लेकर आजतक सभी ऋषि वेदमन्त्रों को स्मरण रखनेवाले व पढ़ने-पढ़ानेवाले रहे हैं; कोई भी उनका कर्ता, लेखक या रचयिता नहीं है।

यह सामर्थ्य उन्हें अतिविशिष्ट तप से प्राप्त हुआ था। आपस्तम्ब को यह खेद है कि कलिकाल में साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों का अभाव हो गया है (इस कालवाले, जो विज्ञान-शक्ति

और तप में निकृष्ट हैं, मंत्रों का उपदेश अर्थात् अध्यापन कर रहे हैं)–

तस्मादृषयोऽवरेषु न जायन्ते नियमातिक्रमात्[87]

यही बात यास्काचार्य ने भी कही है–

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्संप्रादुः।[88]

वेदों को 'अनुश्रव' भी कहते हैं, जिसका अर्थ ही यह है कि वे गुरु-परम्परा से ही सुने जाते हैं। उनका निर्माण नहीं होता। कौषीतकिब्राह्मण[89] का मत है कि वेद के मन्त्र तपःपूत ऋषियों द्वारा आविर्भूत हुए हैं या देखे गये हैं, बनाये नहीं गये। ऐतरेयब्राह्मण[90] का कहना है कि गौरवीति ने सूत्रों या मन्त्र-समूहों को देखा था। मनु, व्यास आदि सभी वेदों की नित्यता को स्वीकार करते हैं। ऋग्वेद के **वाचा विरूपनित्यया**[91]– इस मन्त्र से; तैत्तिरीयब्राह्मण के **पूर्वे पूर्वेभ्यो वच एतदूचुः**[92] – इस मन्त्र से; ब्रह्मसूत्र के **शब्द इति चेन्नातः प्रत्यक्षानुमानभ्याम्**[93] एवं **अत एव च नित्यत्वम्**[94] – इन सूत्रों से, महाभारत के **अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा**[95] , एवं विष्णुपुराण के **प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे द्विज**[96] आदि श्लोकों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेद अपौरुषेय हैं। वे कभी भी मनुष्य-विशेष द्वारा लिखे नहीं गये। उन्हें कण्ठगान के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संप्रेषित किया जाता था। इसलिये उन्हें 'श्रुति' भी कहा गया, अर्थात् सुनने-सुनाने का ग्रन्थ। ब्रह्मा की प्रत्येक सृष्टि (कल्प) के प्रत्येक मन्वन्तर के हर चतुर्युग के द्वापर में व्यास-परम्परा द्वारा वेदों को सुरक्षित रखा जाता है। ये व्यास-ऋषि वेदों में धन, जटा, माला, माला, शिखा आदि अनेक पाठों की व्यवस्था करके उन्हें ज्यों-का-त्यों बनाए रखते हैं। इसलिये भारतवासियों के लिये वेद-ज्ञान सनातन, अपौरुषेय, अमर, अनन्त अर्थात् त्रिकालातीत हैं। 'वेद भूतकाल के लिए थे, किसी युग-विशेष के मस्तिष्क की उपज थे और उसी समय के समाज के लिये उनका उपयोग होता था' इत्यादि बातें पाश्चात्य और उनके पदानुगामी भारतीय विद्वानों के मस्तिष्कों में सबसे पहले आती हैं। भारतवर्ष का जो स्वदेशी जीवन है, उसके रोम-रोम में वेद अब भी विद्यमान है। हमारे समस्त संस्कार, नित्यकर्म अब भी उन्हीं वेद-मंत्रों से होते हैं, जिन्हें **पूर्वे पूर्वजनाः, पूर्वे ऋषयः** अब से पाँच या दस या बीस हज़ार वर्ष या 1,97,29,49,120 वर्ष पूर्व गाते थे।[97]

कुछ विद्वान् वेदों को बीस या तीस हज़ार वर्ष पुराना कहकर बड़े प्रसन्न होते हैं। परन्तु यह भाव भी भारतवर्ष के परम्परागत विचार के विरुद्ध है। वेदों को पाँच हज़ार वर्ष पुराना कहें या बीस हज़ार वर्ष, उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। इन दोनों का ही आर्य-अनुश्रुति से विरोध है। हिंदू-भाव तो वेदों को सनातन मानता है।[98]

आज जो यूरोप सोचता है, उसी की छाया भारतीय विद्वान् सर्वत्र ढूँढ़ते हैं। यूरोप के ही ढले हुए शब्दों, यथा– 'कम्युनिज़्म', 'सोशलिज़्म', 'डिमॉक्रेसी', 'नेशनलिज़्म' आदि में सब सभ्यताओं के इतिहास को घसीट लाने की कोशिश करते हैं। अपना दर्शन जबतक पश्चिमी परिभाषा में न कहा जाए, तबतक वह युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। पश्चिम के शब्द पाकर मानो वह

नये आलोक में खिल उठता है। भारत के तथाकथित विद्वानों ने पश्चिम का अन्धानुकरण करते हुए भारतीय इतिहास को प्राचीन, मध्यकालीन एवम् आधुनिक– इन तीन कल्पित काल-विभागों में बाँटकर, भारतीय संस्कृति को प्राचीन काल में ठूँस दिया है। और इस प्रकार 'भारतवर्ष का इतिहास' (History of India) अभी तक लिखा ही नहीं गया है। इस नाम से जो पुस्तकें प्रचलित हैं, वे पाश्चात्य विद्वानों के विचारों के नमूने हैं। 'इतिहास' शब्द का जो अर्थ वे लगाते हैं, उसी के अनुसार यहाँ का इतिहास उन्होंने लिखा है।[99]

विगत कई हज़ार वर्षों से रामायण और महाभारत के साथ पुराण भी भारतीय-जीवन को अपने विविध आदर्श चरित्रों से अनुाणित और प्रभावित करते चले आ रहे हैं। राम, कृष्ण, हरि, शिव आदि नाम आज भी करोड़ों हिंदुओं के जीवनाधार हैं। दीन-दुःखी जनता के छिन्न-विच्छिन्न स्नायुयों और भग्न हृदयों को बल देकर तथा उसमें आशा-विश्वास का संचारकर पुराणों ने उन्हें उबारने का काम किया है।

और इस तरह इतिहास का भारतीय सामाजिक जीवन में बहुत बड़ा स्थान रहा है। प्राचीन भारत में किसी व्यक्ति की विद्वत्ता का निर्धारण उसके इतिहास-ज्ञान के आधार पर किया जाता था। प्रत्येक राजा के लिये इतिहास-ज्ञान अनिवार्य था। वैदिक शासन का यह नियम था कि प्रतिदिन राजपुरोहित राजा को उसके पूर्वजों का इतिहास सुनाए। राजा स्वयं पढ़े– ऐसा नहीं कहा गया; क्योंकि राजा जब स्वयं इतिहास पढ़ेगा, तो वह ऐतिहासिक घटनाओं का मनमाना अर्थ लगाकर निष्क्रिय, उदासीन बन बैठेगा।[100] रामायण में सुमन्त ने दशरथ से कहा है कि पुराणों के ग्रन्थों में जो कुछ सुन रखा है, वह श्रवण कीजिए–

एतछ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत्। श्रूयता तत् पुरावृत्तं पुराणे च भया श्रुतम्॥[101]

इसी प्रकार धार्मिक अनुष्ठानों, विवाहों, अश्वमेध-राजसूय-वाजपेय यज्ञों में भी इतिहास का वाचन अनिवार्य था। राजवंशों का इतिहास लिखने के लिये प्रत्येक हिंदू राजा के दरबार में विद्वान् नियुक्त होते थे। तीर्थयात्राओं में परिवारों के पण्डे उनकी वंशावलियाँ लिखते थे। गया, जगन्नाथपुरी, बद्रीनाथ इत्यादि स्थानों में आज भी यह परम्परा विद्यमान है।

सन्दर्भ :

1. 'जाह्नवी', मार्च 1980, पृ. 137; महामनीषी डॉ० हरवंशलाल ओबराय रचनावली, प्रथम खण्ड, पृ. 198; सम्पादकद्वय : गुंजन अग्रवाल एवं राजकुमार उपाध्याय 'मणि', साहित्य भारती प्रकाशन, पटना-4, 2008
2. 'भारत का सांस्कृतिक इतिहास पुनर्जीवित हो', 'अखण्ड ज्योति', दिसम्बर, 2004, पृ. 21
3. डॉ० मुरलीमनोहर जोशी द्वारा सन् 2004 में लोकसभा में दिया गया भाषण 'भगवाकरण का भ्रम', पुस्तक : 'यूपीए का शिक्षा के साथ खिलवाड़', भारतीय जनता पार्टी, नयी दिल्ली, सितम्बर 2006, पृ. 47
4. बृहद्देवता, 14.46.5
5. निरुक्तभाष्यवृत्ति, 2.101
6. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 3.15.1; काव्यमीमांसा, म० टी०, 1.2

7. विष्णुमहापुराण पर श्रीधरस्वामी की टीका, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
8. काव्यप्रकाश, 1.2
9. मार्क्सवाद और रामराज्य, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 455
10. वैदिक विश्व-राष्ट्र का इहिास, खण्ड 1, पुरुषोत्तम नागेश ओक, पृ. 388.
11. ब्रह्ममहापुराण, पद्ममहापुराण, विष्णुमहापुराण, वायुमहापुराण, भागवतमहापुराण, नारदमहापुराण, मार्कण्डेयमहापुराण, अग्निमहापुराण, भविष्यमहापुराण, ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, लिंगमहापुराण, वाराहमहापुराण, स्कन्दमहापुराण, वामनमहापुराण, कूर्ममहापुराण, मत्स्यमहापुराण, गरुड़महापुराण, ब्रह्माण्डमहापुराण।
12. सनत्कुमार, नारसिंह, कापिल, मानव, औशनस्, वारुण, कालिका, नन्दिकेश्वर, पराशरोक्त, सूर्य, माहेश्वर, साम्ब, बृहन्नारदीय, शिवधर्म, दौर्वासस्, शिव, आश्चर्य और वसिष्ठ।
13. आदि, मुद्गल, कल्कि, देवी (महाभागवत), देवीभागवत, बृहद्धर्मोत्तर, परानन्द, पाशुपत, हरिवंश (महाभारत का खिलभाग), अंगिरा, आखेटक, आत्म, एकपाद, एकाम्र, क्रियायोगसार, गणेश, जालंधर, तत्त्वसार, ताप्ती, दत्तात्रेय, धर्म, भास, बृहद्धर्म, बृहन्नन्दीश्वर, बृहन्नरसिंह, मरीचि, रेणुका, लघुनारद, लीलावती, वह्नि, वासुकी, विष्णुधर्म, विष्णुरहस्य, विष्णुधर्मोत्तर, हंस, सरस्वती।
14. चौबीस हज़ार श्लोकोंवाला वाल्मीकीयरामायण, योगवासिष्ठ (महारामायण) एवं महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास विरचित अध्यात्मरामायण।
15. महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास-विरचित एक लक्ष श्लोकोंवाला 'महाभारत' एवम् उनके समकालीन महर्षि जैमिनिविरचित 'भारत'। **सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्याः** (आश्वलायनगृह्यसूत्र, 3.4.4), अर्थात् 'सुमन्त सूत्रकार हैं, जैमिनि भारतकार, वैशम्पायन महाभारतकार एवं पैल धर्मशास्त्रकार।' जैमिनिकृत 'भारत' का केवल 'अश्वमेधपर्व' ही प्राप्त है, जो गीताप्रेस, गोरखपुर से 'जैमिनियाश्वमेधपर्व' शीर्षक से काशित है।
16. महाभारत की कथाएँ, आनन्दमार्ग प्रचारक संघ, कलकत्ता, 1981 ई.
17. वही, पृ. 4
18. बृहन्नारदीयपुराण, उत्तरभाग, 24.20
19. भविष्यमहापुराण, मध्यमपर्व, 1.7.3
20. वही, ब्राह्मपर्व, 216.34
21. वही, 216.43
22. भागवतमहापुराण, 3.12.39
23. विष्णुमहापुराण, 3.4.10
24. वही, 5.1.38
25. ब्रह्ममहापुराण, 1.28
26. वही, 235.4
27. मत्स्यमहापुराण, 69.55
28. नरसिंहपुराण, 55.105
29. सौर्यपुराण, 45.13
30. वही, 48.57
31. अथर्ववेद, 15.6.11
32. वही, 15.6.12
33. गोपथब्राह्मण, 1.1.21
34. तैत्तिरीयब्राह्मण, 11.47
35. शतपथब्राह्मण, 11.5.6.8

36. छांदोग्योपनिषद्, 3.4.1
37. वही, 3.4.2
38. वही, 7.1.2; 7.2.1; 7.7.1
39. वही, 7.1.4
40. दक्षस्मृति, 2.51
41. अत्रिस्मृति, 3.7
42. हारीतस्मृति, 5.287
43. वही, 5.348
44. वही, 5.506
45. व्यासस्मृति, 3.10
46. वही, 4.45
47. महाभारत, आदिपर्व, 1.204
48. वही, आदिपर्व, 102.18
49. वही, शान्तिपर्व, 50.36
50. गौतमसूत्रभाष्य, 4.1.62
51. काशीकेदारमाहात्म्य, ब्रह्मवैवर्ते, 15.4
52. ब्रह्मसूत्र, 1.3.33
53. भविष्यमहापुराण, ब्राह्मपर्व, 2.56
54. अर्थशास्त्र, 1.1.5.14
55. वही, 2.5.6.60
56. 'पुराण ही इतिहास हैं', रमाशंकर जमैयार, वेद अमृत, जनवरी, 2005, पृ. 24.
57. विष्णुमहापुराण, 3.6.28.29; भविष्यमहापुराण, ब्राह्मपर्व,2.6; नन्दीपुराण,10.25
58. **शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति** –मुण्डकोपनिषद्, 1.1.5
59. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.1.3
60. रमाशंकर जमैयार, पूर्वोद्धृत, पृ. 24.
61. भविष्यमहापुराण, ब्राह्मपर्व, 2.4-5; वही, उत्तरपर्व, 2.11; शिवमहापुराण, 7.1.1.41; कूर्ममहापुराण, 1.1.12; मत्स्यमहापुराण, 53.65; विष्णुमहापुराण, 3.6.25; मार्कण्डेयमहापुराण, 134.13; नरसिंहमहापुराण, 1.34; ब्रह्मवैवर्तमहापुराण, 133.6; स्कन्दमहापुराण, प्रभासखण्ड, 2.84; ब्रह्माण्डमहापुराण, क्रियावाद, 1.38; वराहमहापुराण, 2.4; अग्निमहापुराण, 1.14; देवीभागवतपुराण, 1.2.18; सौर्यपुराण, 9.4; अभिधानचिन्तामणि; गरुड़महापुराण, 2.28
62. Hermitage Publishers, 2006, ISBN 1557791546, 9781557791542
63. कल्याण, 'हिंदू-संस्कृति अंक', गीताप्रेस, गोरखपुर, 1950 ई., पृ. 301-302
64. मुण्डकोपनिषद्, 3.1.6
65. तैत्तिरीयोपनिषद्, 1.11
66. मनुस्मृति, 4.138
67. 'India has its well written history and the Puranas exhibit that history and chronology.... Puranas are not 'pious frauds'.

—*History of classical Sanskrit Literature,* 1937, p.2.

68. 'To try fixing ancient historical chronology from Athens, Kandy, London or Tokyo dubbing or presuming the Indian Puranas to be frauds is at best a very squint-eyed view of Indian History."

—*Some Blunders of Indian Historical Research,* pp.206-207

69. 'Modern European writers have inclined to disparge unduly the authority of the Puranic lists, but but closer study find in them, much genuine and valuable historical tradition.' —*Early History of India,* p.2
70. *India in Greece: or, Truth in mythology: containing the sources of the Hellenic race, the colonisation of Egypt and Palestine, the wars of the Grand Lama, and the Buddhistic propaganda in Greece*, Published by J.J. Griffin, 1852.
71. हेमाद्रिपुराण
72. शतपथब्राह्मण, 10.4.2.23
73. *The Guinness Book of World Records,* Sterling Publishing Co. Inc., 1981, ISBN 0-80690-196-9.
74. काशीकेदारमाहात्म्य, ब्रह्मवैवर्ते, 15.4-7
75. वही, 15.9-10
76. शतपथब्राह्मण, 14.2.4.10; बृहदारण्यकोपनिषद्, 2.4.10; मैत्रायणीयमारण्यकम्, 6.32
77. भागवतमहापुराण, 3.12.39
78. कल्याण, 'हिंदू-संस्कृति-अंक', पृ. 295
79. पद्ममहापुराण, सृष्टिखण्ड, 1.51
80. विष्णुमहापुराण, तृतीयस्कन्ध, तृतीयोऽध्यायः
81. कल्याण, 'हिंदू-संस्कृति-अंक', पृ. 295; महर्षि वेदव्यास, पं. उमाशंकर दीक्षित, पृ. 28
82. रमाशंकर जमैयार, पूर्वोद्धृत, पृ. 24
83. 'इतिहास-दर्शन', वासुदेवशरण अग्रवाल, 'माधुरी', श्रावण, तुलसी संवत् 306, पृ. 50, 57
84. निरुक्त, 2.11
85. जैमिनीयन्यायमाला, 1.1.53-54
86. मैत्रायणीसंहिता, भाग 3
87. आपस्तम्बधर्मसूत्र, 1.5.4
88. निरुक्त, 1.20
89. कौषीतकिब्राह्मण, 10.30
90. ऐतरेयब्राह्मण, 3.19
91. ऋग्वेद, 8.75.6
92. तैत्तिरीयब्राह्मण, 3.12.92
93. ब्रह्मसूत्र, 1.3.28
94. वही, 1.3.29
95. शान्तिपर्व, 232.24
96. विष्णुमहापुराण, 3.6.32
97. वासुदेवशरण अग्रवाल, पूर्वोद्धृत, पृ. 50-51
98. वही, पृ. 51
99. वही
100. वैदिक विश्व-राष्ट्र का इतिहास, खण्ड 1, पृ. 387
101. वाल्मीकीयरामायण, बालकाण्ड, 9

❖❖❖

पुराणों की इतिहास-दृष्टि

डॉ. प्रवीण कुमार द्विवेदी*

संस्कृत-वाङ्मय में पुराणों का विशेष महत्त्व है। ये इतिहास के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। पञ्चलक्षणात्मक[1] (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित) पुराण-ग्रन्थों में वस्तुतः वैश्विक सृष्टि प्रतिपाद्य रही है। विश्व की सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन **सर्ग**, प्रलय तथा पुनः सृष्टि का वर्णन **प्रतिसर्ग**, देवताओं तथा ऋषियों के **वंशों** का वर्णन, प्रत्येक मनु का काल तथा उस काल की मुख्य घटनाओं का वर्णन **मन्वन्तर** तथा वंशों (प्रमुखतया सूर्यवंश एवं चन्द्रवंश) में उत्पन्न राजाओं का वर्णन **वंशानुचरित** कहा गया है। विष्णुपुराण (1.60.21) के अनुसार महर्षि कृष्णद्वैपायन ने विविध आख्यान-परम्परा का अवलोकन कर एक पुराणसंहिता की रचना की। उस संहिता को उन्होंने अपने शिष्य लोमहर्षण को प्रदान किया। लोमहर्षण ने अपनी एक पुराणसंहिता की रचना की। उनके शिष्यों (अकृतव्रण, सावर्णि और शांशपायन) ने भी अपनी एक-एक संहिताओं की रचना की। इस प्रकार मूल पुराणसंहिता चार ही थीं।[2] ऐसा उपदेश किया गया है। पुराण के विकास का यह प्रथम कल्प दृष्टिगोचर होता है। वायुपुराण में दश पुराणों के ही नाम अवलोकित होते हैं। पुराण के विकास का यह द्वितीय कल्प दृष्टिगोचर होता है। मत्स्यपुराण (53.70) एवं नारदपुराण (1.92.25) के अनुसार पुराणों की संख्या अष्टादश है। पुराण के विकास का यह तृतीय कल्प दृष्टिगोचर होता है। सप्तदश पुराणों पर विद्वानों की सम्मति है, किन्तु वायुपुराण के विषय में विवाद है। कुछ विद्वान् वायुपुराण का निराकरण करके शिवपुराण को मानते हैं तो कुछ शिवपुराण का निराकरण करके वायुपुराण को स्वीकार करते हैं। कुछ विद्वान् वायुपुराण ब्रह्माण्डपुराण में और वायुपुराण और शिवपुराण में ऐक्य मानकर अष्टादश संख्या को पूर्ण करते हैं। पुराणों के आदिकर्ता महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास ही माने गए हैं, किन्तु भविष्यपुराण (3.28.10-25) के अनुसार प्रत्येक पुराण के पृथक्-पृथक् कर्ता हैं।[3]

इतिहास न केवल प्राचीनता को बताता है अपितु सत्य के आलोक (प्रकाश) में अन्धकारमय भविष्य का मार्ग दृष्टिगोचर करता है। सत्यता से प्रकाशित इतिहास किसी को महान् बना देता है तो किसी को क्रूर। इसलिये इतिहासलेखन का कार्य कठिन है। इस कार्य के लिये

* सहायक आचार्य (तदर्थ), संस्कृत-विभाग, इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, नयी दिल्ली

जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रादि सम्बन्धी किसी भी लोभ में व्यक्ति को नहीं पड़ना चाहिये, अन्यथा तत्सम्बन्धी पाश में बद्ध व्यक्ति इतिहासलेखनरूपी पुनीत कार्य को भी अपवित्र कर सकता है। सत्यता को प्रकाशित करना परम धर्म है। केवल सत्य ही प्रकाशित हो असत्य नहीं, यह कठिन कार्य है; क्योंकि कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ नहीं है। व्यक्ति और समाज प्रमाणाधीन होता है। **प्रमाकरणं प्रमाणम्** के अनुसार प्रमा (यथार्थ ज्ञान) के करण (साधन) को 'प्रमाण' कहते हैं। इतिहासलेखन के लिये जो सामग्रियाँ प्रमाणरूप में उपलब्ध होती हैं, क्या वे सत्यता का ख्यापन करने के लिये पर्याप्त हैं? आधुनिक इतिहासकार उत्खनन से प्राप्त सामग्रियों के आधार पर इतिहासरूपी प्रासाद का निर्माण करते हैं। उनके लिये साहित्यिक प्रमाणों में भ्रामक ज्ञान भी हो सकता है। इसी को आधार बनाकर अंग्रेज़ या पाश्चात्य मिथ्याभिमानी लेखकों द्वारा प्रत्येक प्राचीन भारतीयविद्या या श्रेष्ठ ज्ञान-विज्ञान को विदेशी मूल का सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया। उन्होंने कहा कि भारतीयों ने ज्योतिषविद्या या नक्षत्रविद्या बैबीलोन या कालडियावासी असुरों से सीखी, द्वादश राशियों का ज्ञान या सप्ताह के वारों के नामादि यूनानियों से सीखी। पाणिनिव्याकरण में उल्लिखित एक सूत्र में **यवनानी** का उल्लेख होने से उन्होंने माना कि सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् भारतीयों ने यूनानियों से लिखना सीखा। भारतीय नाट्यकला का उद्गम ग्रीकनाटकों से हुआ और भारतीयों ने नगरनिर्माण की कला यूनानियों से सीखी। तदनुसार आर्यजाति घुमक्कड़ थी। उन्हें नगर, कृषि, धातु एवं समुद्रादि का ज्ञान नहीं था। उन्होंने यह सबकुछ द्रविड़ों से सीखा। मैक्समूलर, विन्टरनीत्स, कीथ, मैक्डॉनल आदि को वेदमन्त्रों में समुद्र का उल्लेख ही नहीं दिखाई दिया। तदनुसार प्राचीन भारतीय आर्य भेड़-बकरी चरानेवाले गड़रिये थे और वेदमन्त्र इन्हीं गड़रियों के गीत हैं। पाश्चात्यों का यह भ्रामक ज्ञान स्वाभाविक था, किन्तु स्वाधीनता के बाद भी पाश्चात्यविद्या का गुणगान और पठन-पाठन भारतीयों के लिये युक्तियुक्त नहीं है।[4] आज स्वतन्त्रता के 70 वर्षों के बाद हमारे विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पाश्चात्य लेखकों (कीथ, वेबर, मैक्डॉनल, विन्टरनीत्स, मैक्समूलर आदि) के ग्रन्थ परम प्रामाणिक रूप से पढ़ाए जा रहे हैं। ये वही संस्कृत साहित्य के इतिहासग्रन्थ हैं जो भारतवर्ष पर शासन की दृष्टि से लिखे गये थे।[5] इतिहास के क्षेत्र में रामायण, महाभारत और पुराणों को कीथादि की कृपा से अस्पृश्य बना दिया गया है जबकि भारतीय दृष्टि यह है कि प्राचीन भारत का मूल इतिहासपुराणों में प्राप्त होता है।[6] पाश्चात्य लेखकों ने आर्यजाति की कल्पना करके उल्टी गंगा बहाई कि यूरोप के किसी देश की मूलभाषा इण्डोयूरोपियन थी और उसको बोलनेवाले आर्य उसी योरोपीय मूल से प्रस्थान करके ईरान, भारतादि विदेशों में जा बसे।[7]

भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी समस्या पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्धारित कालगणना है। यह काल-निर्धारण सभी समस्याओं का क्रोड़ है। पुराणों के मत में देवताओं के 4,000 वर्षों (मनुष्यों की गणना के अनुसार 14 लाख चालीस हज़ार वर्षों का) सत्ययुग, देवताओं के 4 सौ वर्षों की (मनुष्यों के 1 लाख 44 हज़ार वर्षों की) सन्ध्या और उतने ही काल का सन्ध्यांश होता है। इस प्रकार मनुष्यों के 17 लाख 28 हज़ार वर्षों का सत्ययुग होता है। मनुष्यों के 12 लाख 96 हज़ार वर्षों का त्रेतायुग, 8 लाख 64 हज़ार वर्षों का द्वापरयुग और 4 लाख 32 हज़ार वर्षों का कलियुग होता है। इस प्रकार देवताओं के 12,000 वर्षों (मनुष्यों के 43 लाख 20 हज़ार वर्षों)

में एक चतुर्युगी पूर्ण होती है। ऐसे 71 चतुर्युगों का एक मन्वन्तर होता है जो ब्रह्मा का एक मुहूर्त होता है। मन्वन्तर 14 हैं। 71 को 14 से गुणा करने पर 994 युग (चतुर्युग) हुए। शेष 6 चतुर्युग को ब्रह्मा को दोनों सन्ध्याओं का काल माना जाता है और इस प्रकार एक हज़ार चतुर्युग मिलाकर ब्रह्मा का एक दिन होता है। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा का एक दिन सूर्य की आयु है। इसके बाद सूर्यमण्डल विशीर्ण होकर लीन हो जाता है। वह सूर्य का अभावकाल ही ब्रह्मा की रात्रि है। यह दिन-रात को मिलाकर ब्रह्मा का एक पूरा अहोरात्र हुआ जो **कल्प** नाम से पुराणों में कहा गया है।[8] जैसे हमारे द्वारा 30 दिनों का एक मास माना जाता है, वैसे ही ब्रह्मा के एक महीने में 30 कल्प होते हैं। मत्स्यपुराण के अनुसार शुक्लपक्षवाले कल्प के पन्द्रह कल्पों के नाम श्वेतवाराह, नीललोहित, रथन्तर, रावण, प्राण, बृहत्, कन्दर्प, सत्य, ईशान, व्यान, सारस्वत, उदान, गरुड, कूर्म्म और वामदेव हैं। कृष्णपक्षवाले कल्पों के नाम नारसिंह, समान, आग्नेय, सोम, मानव, तत्पुरुष, वैकुण्ठ, लक्ष्मी, सावित्री, घोर, वाराह, वैराज, गौरी, माहेश्वर और पितृकल्प हैं।[9] ब्रह्मा का वर्ष और उनकी सौ वर्ष की आयु की अवधि दो परार्ध के बराबर मानी जाती है। संस्कृत में परार्ध ही अन्तिम संख्या मानी जाती है। ब्रह्मा की आयु का एक परार्ध बीत चुका है और दूसरा परार्ध चल रहा है। अभी श्वेतवाराह कल्प का अट्ठाईसवाँ कलियुग चल रहा है।[10] पश्चिमी विद्वानों के धर्मग्रन्थों में सृष्टि की आयु बहुत कम मानी गई है। बहुत-से पाश्चात्य विद्वान् इस पौराणिक प्रक्रिया का उपहास करते थे, किन्तु जब उनके देशों के ही वैज्ञानिकों ने अपनी ही मानी हुई वैज्ञानिक-प्रक्रिया के अनुसार नदियों के वर्तमान तट-प्रदेशों की बनावट की आयु या समुद्रजल में क्षारता कितने दिनों में आई, आदि का अन्वेषण करने पर पता लगाया कि यह सृष्टि लाखों, करोड़ों ही नहीं अपितु अरबों वर्ष पुरानी है, जबकि पुराणों ने अपनी गणना के अनुसार सृष्टि की प्राचीनता को निश्चित कर दिया है।[11]

पुराणों के अनुसार भारतवर्ष के नौ भेद हैं– इन्द्रद्वीप, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वारुण, कशेरुमान्, गभस्तिमान्, ताम्रपर्ण (सिंहल) और कुमारिका। इन्द्रद्वीप का कहीं-कहीं नाम इन्द्रद्युम्न है। आजकल यह अण्डमान है। नागद्वीप का आधुनिक नाम निकोबार है। सौम्य को सुमात्रा, यवद्वीप और बालिद्वीप भी कहा जाता है। फिलीपाइन ही गान्धर्वद्वीप है। बोर्नियो वारुणद्वीप है। कशेरुमान् को कसेरू भी कहते हैं। गभस्तिमान् और मलूका एक ही है। ताम्रपर्ण ही सिंहल या सिलोन है। कुमारिका ही कुमारीद्वीप अर्थात् पाकिस्तान सहित भारतवर्ष है।[12] इन नौ द्वीपों को बहत्तर भागों में बाँटा गया है और उन बहत्तरों भागों के नगरों तथा ग्रामों की संख्याओं का उल्लेख स्कन्दपुराण (माहेश्वरखण्ड, अध्याय 39) में है।[13] पुराणों के अवलोकन के पश्चात् प्राचीन भारत में जनपदों की संख्या 205 थी– कुरु, पाञ्चाल, शाल्ब, आत्रेय, जांगल, शूरसेन, पुलिन्द, बौध, माल, मत्स्य, कुशट्ट, सौगन्ध्य, कुन्त, काशी, कोशल, चेदि, भोज, सिंधु, पुलिन्द, उत्तम, दशार्णा, मेकल, उत्कल, नैकपृष्ठ, युगन्धर, मद्र, कलिंग, अपरकाशी, जठर, कुकुर, सुसत्तम्, अवन्ती, कुन्ती, अपरकुन्ती, गोमन्त, मल्लक, पुण्ड्र, विदर्भ, नृपवाहिक, अश्मक, सोत्तर, गोपराष्ट्र, कनीयस्, केरल, वक्रावक्रातप, शक, विदेह, मागध, सद्य, मलज, विजय, अंग, बंग, कलिंग, यल्लोमान्, सुदेष्ण, प्रह्लाद, महिष, शशक, वटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पंकल, चर्मचण्डक, अटवी, शेखर, मेरुभूत, सत्तम, उपावृत्त, अनुपावृत्त, केकय, कुहा,

अपरान्त, माहेय, कक्ष, समुद्र, निष्कुट, अन्ध, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, अमंगलद, मगध, मालवार्यट, सवतर, पावृषेय, भार्गव, द्विजर्षभ, भार्ग, किरात, भासुर, शक, निषाद, निषध, आनर्त्त, नैऋत, पूर्णल, पूर्त्तिमत्स्य, कुशक, तीरग्रह, शूरसेन, ईजिक, कल्पकारण, तिलभाग, मसार, मधुमत्त, ककुन्द, काश्मीर, सिंधु, सौवीर, गान्धार, दर्शक, कुद्रुत, सौरिल, दर्वी, मालव, दर्वा, वातजामरथ, उरग, बसरह, विप्र, सुदामा, सुमल्लिक, बन्ध, करीष, कुलिन्द, गन्धिक, वानायव, दश, पार्श्वरोम, कुशबिन्दु, कच्छ, गोपाल, जंगल, कुरुवर्ण, बर्बर, सिद्ध, विदेह, ताम्रलिप्तिक, उण्ड्र, म्लेच्छ, ससैरिन्द्र, द्रविड, प्राच्य, मूषिक, बालमूषिक, कर्णाटक, माहिषक, विकन्ध, झल्लिक, कुन्तल, सुहृद, नलकानन, कोकुहक, चोल, कोंकण, मणिवालव, समंग, कनक, कुकुरांगवर, मारिष, ध्वजिन्युत्सव, त्रिगर्भा, माल्यसेना, व्यूढक, कोरक, प्रोष्ठ, संगवेगधर, विन्ध्य, रुलिक, पुलिन्द, वल्वल, वर्तक, कालदा, चण्डक, कुरत, मुझला, तनवाला, सतीर्थापूति, सृज्जय, अनिदा, शिवादा, तपाना, सूतपा, ऋषिक, विदर्भ, तंगण, परतंगण, जवन, कम्बोज, समृह, कुलट, हुण्ड, पारसी, दरद, खाण्डीक, तुषार, आत्रेय, भरद्वाज, स्तनपोषक, द्रोण, तोमर, हन्वमान् और करभंज।[14]

पुराणों में जिन पर्वतों का उल्लेख है, उनमें– मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधारा, विन्ध्य, शुक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभनील, गोकामुख, इन्द्रकील, कामगिरि प्रमुख हैं।[15] इनमें सात कुलपर्वत माने गये हैं– महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, हेम/ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र।

पुराणों में नदियों के नाम गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, सरयू, कावेरी के उद्गम-स्थल से लेकर समुद्र-मिलन तक का वर्णन है। भागवतपुराण के पञ्चम स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में निम्नलिखित नदियों का विवरण प्राप्त होता है– चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, तमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुंगभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिंधुरन्ध्र, शोण, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी, विश्वा।[16] वायुपुराण में 78, वाराहपुराण में 22, कूर्मपुराण में 13, गरुडपुराण में 5, भागवतपुराण में 8, ब्रह्माण्डपुराण में 15 नदियों, ब्रह्मपुराण में 2, मार्कण्डेयपुराण में 6, वामनपुराण में 32, पद्मपुराण में 58 और मत्स्यपुराण में 24 नदियों का विस्तृत वर्णन है।[17]

आज इतिहास के तथाकथित ज्ञाता पुराण को कल्पना मानते हैं, जबकि प्राचीन काल में पुराण एक ऐतिहासिकविद्या के रूप में प्रतिष्ठित थे। महाभारत के अनुसार इतिहास और पुराण के द्वारा ही वेदार्थ का विस्तार करना चाहिये। शास्त्रों का अच्छी प्रकार से श्रवण न करनेवाले से वेदों को यह भय होता है कि वे हमारे ऊपर प्रहार करेंगे–

इतिहासपुराणाभ्यां वेद समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥[18]

भागवतपुराण के अनुसार इतिहास और पुराण पञ्चम वेद कहे गये हैं।[19] बृहदारण्यकोपनिषद् के मत में इतिहासपुराण परमात्मा के निःश्वास हैं।[20] महाभारत के आदिपर्व के अनुसार इतिहास लोक में व्याप्त मोहरूपी अन्धकार को दूर करता है।[21] साथ ही मत्स्यपुराण के मत में जो वेदों को सपुराण नहीं जानता है वह विचक्षण नहीं है।[22]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यदि हमें भारतीय मूल ऐतिहासिक दृष्टि को सम्यक् रूप से अवबोध करना है, तो हमें पुराणों का अध्ययन करना होगा। अभिलेखों में भी राजाओं की प्रशंसा में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है और इन वर्णनों का उनके समय या स्थिति पर प्रश्नवाचक चिह्न नहीं उपस्थित करता है, किन्तु इसी प्रकार का वर्णन पुराणों को कल्पना बना देता है, यह चिन्तनीय है। भारतीय दृष्टि से इतिहासलेखन में पुराण एक प्रबल प्रमाण हैं– यह इतिहासज्ञों को निर्विवादित रूप से मानना चाहिये।

सन्दर्भ :

1. **सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥**

   –विष्णुपुराण, 24.63 तथा अमरकोश, 1.6.5
2. अष्टादशपुराणदर्पण, उपोद्घात, पृ. 13
3. **आख्यानैश्चाप्युपाख्यानै गाथाभि कल्पशुद्धिभिः। पुराणसंहिता चक्रे पुराणार्थविशारद॥**

   –विष्णुपुराण 3.6.15
4. पुराणों में इतिहास, भारतीय इतिहास की विकृति के कारण, पृ. 3
5. वही, पृ. 4
6. वही, पृ. 4
7. पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम, पृ. 32
8. पुराण-परिशीलन, पृ. 208
9. वही, पृ. 209
10. वही, पृ. 217
11. वही, पृ. 217
12. वायुपुराण, 13.4; अग्निपुराण, 118; मार्कण्डेयपुराण, 54; ब्रह्माण्डपुराण, 16; ब्रह्मपुराण, 18; वायुपुराण, 1.45; विष्णुपुराण, 2.3; पुराण-परिशीलन, पृ. 309-310
13. पुराण-परिशीलन, पृ. 315
14. वही, पृ. 343-348
15. भागवतपुराण, 5.19; अग्निपुराण, 118; पद्मपुराण, आदिखण्ड, 6; विष्णुपुराण, 2.3; वायुपुराण, 1.45; गरुडपुराण, 55.2-19; ब्रह्माण्डपुराण, 16.4; वाराहपुराण, 74.9; स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, 4.2; वामनपुराण, 13; मत्स्यपुराण, अध्याय 114; पुराण-परिशीलन, पृ. 316-318
16. पुराण-परिशीलन, पृ. 323
17. वही, पृ. 331-335
18. महाभारत, आदिपर्व, 1.268
19. **इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः** –भागवतपुराण, 3.12.39
20. **स यथा द्रैधाग्नेभ्याहितात् पृथक्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि अनुव्याख्यानानि**

व्याख्यानानि अस्यैवैतानि निःश्वसितानि ।

—बृहदारण्यकोपनिषद्, 2.4.10

21. **इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना। लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् सम्प्रकाशितम्॥**

—महाभारत, आदिपर्व, 201.23

22. **यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विज। न चेत्पुराण सविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षण॥**

—मत्स्यपुराण, 2.51

आधार-ग्रन्थ सूची :

अष्टादशपुराणपरिचय : (लेखक) श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, (सम्पादक) श्रीपति अवस्थी, चौखम्बा सरस्वतीभवन, वाराणसी, उत्तरप्रदेश, 1980

अष्टादशपुराणदर्पण : खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, 1993

पुराणों में इतिहास, डॉ. कुँवरलाल व्यासशिष्य, इतिहासविद्या प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1988

पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम (आद्य भारतीय इतिहास की रूपरेखा), डॉ. कुँवरलाल जैन व्यासशिष्य, इतिहासविद्या प्रकाशन, 1988

पुराण-परिशीलन, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, बिहार, द्वितीय संस्करण, 1998

❖❖❖

विज्ञान, इतिहास और अंधविश्वास

रवि शंकर

इतिहास और कालगणना का सम्बन्ध पूरी तरह अन्योन्याश्रित है। इतिहास काल के पृष्ठों में दर्ज़ घटनाओं को कहा जाता है। इस प्रकार देखा जाए तो इतिहास वास्तव में काल को पढ़ने, जानने और समझने का एक साधनमात्र है। इसलिए इतिहास को पढ़ने और जानने के लिए हमें काल और कालगणना को जानना-समझना ही पड़ता है। काल की अवधारणा बदलने से मानव-इतिहास ही नहीं, सृष्टि का इतिहास भी बदल जाता है। काल की अवधारणा में अन्तर का ही परिणाम होता है कि एक इतिहासकार भारत के इतिहास को युगों और मन्वन्तरों की गणना में देखता है तो दूसरा इतिहासकार इसे इपोक, इयान आदि की गणना में। एक इतिहासकार भारत के इतिहास को हड़प्पा से प्रारम्भ करता है और उसके पहले के इतिहास को प्रागैतिहासिक यानी इतिहासपूर्व लिखता है; वहीं, दूसरा इतिहासकार महाभारत-युद्ध को भारत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में स्वीकार करता है परंतु उसके बाद भी वह महाभारत से पहले की घटनाओं को प्रागैतिहासिक नहीं कहता, उसे भी वह इतिहास के रूप में स्वीकार लेता है। काल की अवधारणा इस हद तक हमारे इतिहासलेखन और विज्ञान-दृष्टि को प्रभावित करती है कि इससे ही यह मानना सुनिश्चित हो पाता है कि मनुष्य और बंदर दो अलग-अलग योनियाँ हैं या फिर बंदर ही आज मनुष्य बन गया है और मूलतः दोनों एक ही योनी है। भारत के सम्बन्ध में यह बात इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि कालगणना की ग़लत अवधारणा को स्वीकारने के कारण ही भारतवर्ष के लाखों वर्षों के इतिहास को नकार दिया जाता है। इसलिए इतिहास की कालगणना को प्रारम्भ करने से पहले काल की अवधारणा को समझना काफ़ी आवश्यक है।

काल की अवधारणा को समझने में समस्या यह आती है कि काल की अवधारणा पूरी तरह से आधुनिक साइंस, जिसे हम साधारण भाषा में समझने के लिए मापन-विधि[1] भी कह सकते हैं, पर आधारित नहीं है, जिसे सटीकता के साथ मापा जा सके। इसमें दर्शन की भूमिका आ जाती है। आधुनिक साइंस के जन्म से पहले भी कालगणना में विज्ञान के बजाय दर्शन की भूमिका होती थी और आज भी साइंस के बजाय थियोलॉज़ी ही इसका निर्धारण कर रही है। इस बात को इंगित करते हुए प्रसिद्ध भौतिकीविद् और गणितज्ञ डॉ. सी.के. के राजू लिखते हैं, 'काल की अवधारणा में ही साइंस रिलीजियन से मिलता है। काल की अवधारणा ही विज्ञान और कल्चर (संस्कृति) में मेल कराती है, काल की अवधारणा को बदलने से एक ओर विज्ञान के नियम बदल जाते हैं, वहीं

दूसरी ओर इससे नैतिक नियम भी बदलते हैं। इस प्रकार काल की अवधारणा को समझने से हम यह समझ सकते हैं कि किस प्रकार साइंस (विज्ञान) और कल्चर (संस्कृति) एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।'[2]

काल की अवधारणा और थियोलॉज़ी यानी मजहबी पूर्वाग्रहों के सम्बन्ध को समझाते हुए राजू आगे लिखते हैं, 'आत्मा का काल की अवधारणा से क्या लेना-देना है। आत्मा का काल से सम्बन्ध बनता है मृत्यु के पश्चात् के जीवन से। यदि समय अर्धचक्रीय होगा, तो उसमें सामान्य अर्थों में मृत्यु के बाद भी जीवन होगा। मृत्यु के पश्चात् जीवन के बारे में चर्च ने पुनर्जन्म (मृत्यु के बाद बारम्बार जन्म लेने की अवधारणा) को रिसरेक्शन यानी प्रलय के दिन पुनरुत्थान की अवधारणा में बदल दिया। ...समय की अवधारणा में यह बदलाव सदियों तक चलता रहा और यह वर्तमान भौतिकी में भी शामिल कर दिया गया है। स्टीफन हॉकिंग की काल-सम्बन्धी पूरी अवधारणा काल की चक्रीय अवधारणा के सुविचारित खण्डन पर आधारित है।'[3]

काल की ईसाई-अवधारणा और स्टीफन हॉकिंग

डॉ. राजू का यह कथन स्पष्ट कर देता है कि आज का विज्ञान भी थियोलॉज़ी से निर्देशित हो रहा है। भले ही वह अपने सिद्धान्तों को अवलोकनों और परीक्षणों पर आधारित बताता है, परंतु वह इस बात की अवहेलना कर देता है कि अवलोकित और परीक्षित तथ्यों का विश्लेषण भी पूर्व-धारणाओं के आधार पर ही किए जाते हैं। समान तथ्यों का विश्लेषण भिन्न पूर्व-धारणाओं के आधार पर किए जाने पर भिन्न-भिन्न परिणाम देते हैं। इसलिए अवलोकन और परीक्षण स्वयं में कोई प्रमाण नहीं होते। उनके आधार पर हमें स्वयं ही निष्कर्ष निकालने होते हैं और उसमें हमारी पूर्व-धारणाएँ पूरी तरह हावी होती हैं। इसे हम स्टीफन हॉकिंग के एक उद्धरण से समझ सकते हैं। स्टीफन हॉकिंग काल की अवधारणा पर लिखते हैं, मानव जीवन की तुलना में ब्रह्माण्ड के समय का पैमाना काफ़ी बड़ा है। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि अभी हाल-हाल तक ब्रह्माण्ड को समय में अपरिवर्तनीय माना जाता था। दूसरी ओर यह स्पष्ट था कि समाज कल्चर और तकनीकी के मामले में विकास कर रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव-जीवन का यह कालखण्ड कुछ हज़ार वर्षों से अधिक का नहीं हो सकता। अन्यथा हम अभी की तुलना में और अधिक विकसित होते। इसलिए यह मानना एकदम स्वाभाविक है कि मानव जाति और सम्भवतः पूरे ब्रह्माण्ड का प्रारम्भ काफ़ी हाल ही में हुआ हो। हालांकि कई लोग ब्रह्माण्ड के प्रारम्भ की अवधारणा से प्रसन्न नहीं होंगे; क्योंकि इससे किसी अतिमानवीय ताकत के अस्तित्व को मानना होगा जिसने इसकी रचना की। वे यह मानना पसंद करते हैं कि ब्रह्माण्ड और मानव जाति हमेशा से विद्यमान रहे हैं। मानव जाति के विकास का कारण वे नियमित अंतराल पर आनेवाली बाढ़ों तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं को बताते हैं जिनके कारण मानव जाति बारम्बार आदिम अवस्था में आ जाती है।[4]

हॉकिंग के इस कथन को यदि हम वैज्ञानिक तरीके से व्याख्यायित करना चाहें, तो बहुत ही कठिनाई होगी। सबसे पहले तो यही स्पष्ट नहीं है कि हॉकिंग पूर्वपक्ष किसको स्वीकार कर रहे हैं; क्योंकि जो भी लोग ब्रह्माण्ड और जीवन की निरंतरता को स्वीकार करते हैं, वे सभी

एक अतिमानवीय शक्ति की अवधारणा को स्वीकारते ही हैं। ऐसे में यह स्पष्ट ही नहीं है कि हॉकिंग खण्डन किनका कर रहे हैं। दूसरी बात जो हॉकिंग प्रारम्भ में ही स्थापित करने का प्रयास कर रहे होते हैं कि मानव-जाति का इतिहास कुछेक हज़ार वर्षों से अधिक का नहीं हो सकता, इसका वे कोई वैज्ञानिक आधार नहीं दे रहे हैं, यह उनकी एक धारणामात्र है और इस धारणा का आधार विकास की मिथ्या अवधारणा है। वे तकनीकी के विकास को मानव का विकास मान रहे हैं, जो कि पूरी तरह ग़लत है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि मानव किसे कहा जाए, हॉकिंग को यह भी ठीक से स्पष्ट नहीं है या फिर वे मानव की ईसाई-अवधारणा को ही स्वीकार करते हैं। वास्तव में यह ईसाई-मान्यता है कि मनुष्य और ब्रह्माण्ड का प्रारम्भ 4004 ई.पू. में हुआ और क़यामत के दिन इसकी समाप्ति हो जाएगी। इस प्रकार ईसाई-मान्यता में मनुष्य और ब्रह्माण्ड के प्रारम्भ कुछेक हज़ार वर्ष पहले हुआ था और क़यामत के दिन इसका अंत होना है। क़यामत के बाद क्या होगा, इस पर ईसाइयत मौन है और इसलिए इस बारे में स्टीफन हॉकिंग सरीखे विज्ञानी भी मौन हैं। आधुनिक विज्ञान में काल की अवधारणा स्टीफन हॉकिंग की इसी पूरी तरह अवैज्ञानिक अवधारणा 'एरो ऑफ़ टाइम' पर अवलम्बित है।

हॉकिंग इसके आगे जो लिखते हैं, उससे और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि वे मूलतः ईसाई-अवधारणाओं को ही विज्ञान में घुसेड़ने का काम कर रहे हैं। वह लिखते हैं, ब्रह्माण्ड का प्रारम्भ है या नहीं, यह विवाद उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में रहा था। इसे मुख्यतः थियोलॉज़ी और फिलॉसफी के आधार पर चलाया जा रहा था और अवलोकित प्रमाणों को बहुत ही कम वजन दिया जा रहा था। शरारतपूर्ण तथा अविश्वसनीय स्वरूपवाले ब्रह्माण्डीय अवलोकनों के आधार पर अभी हाल-हाल तक यह काफ़ी प्रामाणिक माना जाता था। ब्रह्माण्डविज्ञानी सर आर्थर एड्डिंगटन ने एक बार कहा था– 'यदि तुम्हारा सिद्धान्त प्रत्यक्ष अवलोकनों के अनुकूल नहीं है तो चिन्ता मत करो; क्योंकि वे अवलोकन सम्भवतः ग़लत हैं।' परंतु यदि आपका सिद्धान्त थर्मोडायनमिक्स के दूसरे नियम के प्रतिकूल है तो यह एक गम्भीर समस्या है। वास्तव में यह मानना कि ब्रह्माण्ड हमेशा से उपस्थित था, थर्मोडायनमिक्स के दूसरे नियम के एकदम विपरीत है। यह नियम बताता है कि विकृति हमेशा समय के साथ बढ़ती जाती है। मानव के विकास के सम्बन्ध में यह बताता है कि इसकी अवश्य ही एक शुरूआत होनी चाहिए, अन्यथा यह ब्रह्माण्ड अभी तक पूर्ण विकृति की अवस्था में आ गया होता और हरेक वस्तु एक समान तापमान पर होती। एक अनन्त और हमेशा विद्यमान ब्रह्माण्ड में प्रत्येक दृष्टि किसी तारे की सतह पर जाकर टिकेगी। इसका तात्पर्य यह होगा कि रात में आकाश सूर्य की सतह जितना ही चमकदार होगा। इस स्थिति को टालने का केवल एक ही उपाय है कि तारे एक ख़ास समय के पहले नहीं चमकते।[5]

वास्तव में देखा जाए तो हॉकिंग की इन बातों में कोई तारतम्यता नहीं है। पहली बात तो यह है कि मानव कोई भौतिक विकृति नहीं है, वह एक चेतन कृति है। थर्मोडायनमिक्स का दूसरा नियम भौतिक जगत् के विकास को तो प्रभावित करता है, परन्तु यह मानव यानी प्राणी-जगत् के विकास को प्रभावित नहीं करता। थर्मोडायनमिक्स के सिद्धान्त भौतिक यानी जड़ जगत् के लिए हैं, चेतन जगत् के लिए नहीं। दूसरी बात यह है कि थर्मोडायनमिक्स का दूसरा सिद्धान्त जो बता

रहा है, वह भी ब्रह्माण्ड की भारतीय अवधारणा को ही पुष्ट कर रहा है। भारत में जब भी कभी ब्रह्माण्ड के अनादित्व तथा अनन्तता की चर्चा होती है, वह अनन्तता और अनादित्व प्रवाह से होती है। यानी ब्रह्माण्ड की रचना होती है, जिसे हॉकिंग प्रारम्भ कह रहे हैं, फिर वह नष्ट होता है, परन्तु उसके बाद इसकी पुनः रचना होती है। इस बात को वेद के अघमर्षण सूक्त में बहुत ही अच्छे तरीक़े से समझाया गया है। वहाँ कहा गया है– **सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्, दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथोस्वः**।[6] सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, नक्षत्रादि दिव्य पदार्थ, अन्तरिक्षादि सभी की ईश्वर फिर से उसी प्रकार रचना करता है, जैसा कि उसने उन्हें पूर्व में रचा था। वेदों का यह निर्देश स्पष्ट कर रहा है कि ब्रह्माण्ड की रचना बारम्बार होती है। यानी इसका प्रारम्भ होता है, फिर यह नष्ट होता है और फिर से इसकी रचना होती है। इसे ही काल की चक्रीय गति कहते हैं, इसे ही ब्रह्माण्ड का अनादित्व कहते हैं। इसलिए हॉकिंग जिस थर्मोडायनमिक्स के दूसरे सिद्धान्त को अपनी बात साबित करने के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं, वह वास्तव में उनकी बात को ग़लत ही साबित कर रहा है। थर्मोडायनमिक्स के दूसरे सिद्धान्त से चार्ल्स लाइल का समानता का सिद्धानत यानी थियोरी ऑफ़ यूनिफार्मिटेरियनिज़्म पूरी तरह खण्डित हो जाता है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इसी समानता के सिद्धान्त को आधार मानकर आज सारी भूगर्भशास्त्रीय गणनाएँ की जाती हैं। यदि यह सिद्धान्त ही स्वयं में ग़लत है, तो इसके आधार पर की जानेवाली सभी गणनाएँ भी स्वतः ग़लत साबित हो जाती हैं। इसकी विस्तृत विवेचना आगे 'पुरातत्त्व और इतिहास' शीर्षक के अंतर्गत में की जाएगी।

एकरैखिक बनाम चक्रीय काल

प्रश्न उठता है कि यदि काल की आधुनिक विज्ञान की अवधारणा ईसाइयत पर अवलम्बित है और ग़लत है, तो काल की सही अवधारणा क्या है? भारतीय मत में सृष्टि और प्रलय प्रवाह से अनादि और अनन्त हैं। भारतीय मत में काल भी अनादि है। इसलिए बहुधा ईश्वर को काल और काल को ही ईश्वर भी कहा जाता है। जिस प्रकार समस्त सृष्टि ईश्वर से उत्पन्न होकर ईश्वर में समा जाती है, ठीक उसी प्रकार समस्त सृष्टि काल से उत्पन्न होकर काल में ही समा जाती है। सृष्टि की उत्पत्ति से पहले भी काल की स्थिति होती है और सृष्टि के नष्ट होने के बाद भी। इस बात को स्पष्ट करते हुए प्रख्यात इतिहासकार डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं, 'अब उन लोगों को लीजिए, जिनके यहाँ काल अनादि है, संख्यातीत है, एकरस है। उसमें किसी को भूत और किसी को वर्तमान कहना एकरसता के विरुद्ध है। यदि वस्तुतः अतीत को अनागत से अलग निकालकर किसी अंश की कल्पना की जाए, तो फिर सबकुछ भूत ही हो जाता है। प्रत्येक क्षण, जबकि मनुष्य बोल रहा है, भूत में परिवर्तित ही नहीं हो रहा, भूत ही है। हर एक क्षण कोटि कल्प के बराबर है, अर्थात् अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्मता के साथ महतोमहीयान् भी है। जिसको एक क्षण कहते हैं, यदि उसी पर विचार करने लगें, तो उसकी गुरुता प्रतीत होती है। उसकी कुक्षि में अक्षय काल भरा हुआ है, अर्थात् हम उसके टुकड़े करने लगें, तो कहीं अंत न होगा। उस निमेष के पिण्ड में समस्त काल का ब्रह्माण्ड है। परमाणु और विराट् प्रकृति– दोनों ही अनन्त हैं।

अनादिनिधनत्वेन स महान् परमेश्वरः।

निमेषादपि सूक्ष्मत्वात्सूक्ष्मतरो ह्यति॥
तस्य सूक्ष्मातिसूक्ष्मस्य तथापि महतो द्विजः।
मानसंख्या बुधैर्ज्ञेया ग्रहगत्यनुसारतः॥
अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमरः।
सर्वगत्वात् स्वतंत्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वरः॥

अर्थात् काल अनादि, अनन्त, अजर और अमर है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। उस एक काल में उपाधियाँ ग्रहों की गति से मान ली जाती है। निमेष, घड़ी, अहोरात्र, पक्ष, मास, ॠतु, संवत्सर– ये नाना भेद सब अतात्त्विक हैं। निमेष जैसी कोई वस्तु नहीं है, इस ग्रह की उपाधि से भूलोक में जो अहोरात्रावधिक काल है, एकरस काल की दृष्टि में उसकी कोई परिच्छिन्न कल्पना नहीं। सोम, मंगल, आदि लोक-लोकों में किसी और मान को अहोरात्र कहते होंगे। जो काल सर्वस्वतंत्र है, उसमें भूत-वर्तमान का बन्धन कहाँ? जो व्यापक है, उसमें उपाधि-भेद से वास्तविक भेद कहाँ आ सकता है? जो और सबको परिच्छिन्न करनेवाला है, वह स्वयं परिच्छिन्न कैसे हो सकता है? अजर-अमर का भाव ही यह है कि उसमें भूत-जैसी दुःखमयी कल्पना नहीं है। वस्तुतः भारतवर्ष की समय की कल्पना ऐसी ही है। काल के इस स्वरूप में और आत्मा के स्वरूप में कुछ भेद नहीं है। जो परमेश्वर स्वतंत्र, सर्वव्यापक, अनादि, अनन्त है, उसी का दूसरा नाम **काल** हुआ **(कालः कलयतामहम्)**। इस प्रकार काल-जैसी कोई पृथक् वस्तु नहीं रह जाती।'[8]

इस प्रकार भारतीय मत में काल अनादि है, अनन्त है और इसलिए वह एक एरो यानी तीर की भाँति नहीं है, वह एक साइकिल यानी चक्र की भाँति है। इस चक्र में सृष्टि-स्थिति-प्रलय एक क्रम में निरन्तर आते रहते हैं। यही कारण है कि भारतीय ज्योतिषविज्ञान वर्तमान सृष्टि की आयु उस समय से बताता आ रहा है, जिस समय ईसाइयत और उनके पुरोधा पैदा भी नहीं हुए थे। यह जानना और भी रोचक हो सकता है कि जिस समय आधुनिक विज्ञान के जनक यूरोपीय ईसाई सृष्टि की आयु को 4004 वर्ष ईसा पूर्व यानी लगभग साढ़े पाँच से छह हज़ार वर्ष बता रहे थे, उस समय भी भारतीय ज्योतिषविज्ञानी वर्तमान पृथिवी की आयु 1.97 अरब (1.97 बिलियन) वर्ष बता रहे थे। आज भी भारत का अनपढ़ तथा अविज्ञानी ज्योतिषी वर्तमान पृथिवी की आयु को 1.97 अरब और ब्रह्माण्ड की **वर्तमान** आयु को इससे भी अधिक यानी एक परार्ध यानी 15,55,20,00,00,00,000 वर्ष बताते रहे हैं। इसे हम संकल्प-पाठ, जोकि भारत के हरेक कर्मकाण्ड के प्रारम्भ में पण्डितों द्वारा करवाया जाता है, से समझ सकते हैं। संकल्प-पाठ के प्रारम्भ में ही हम इस कालगणना को स्मरण कर लेते हैं। यह पूरा पाठ इस प्रकार है–

श्रीपुराणपुरुषोत्तमस्य सकलजगदाधारस्य आदिनारायणस्य श्रीमहाविष्णो राज्ञया प्रवर्त्तमानस्याद्य परार्धद्वयजीविनो श्रीब्रह्मणस्य द्वितीयेपरार्धे (ब्रह्मा के इक्यावनवें वर्ष के) **श्रीश्वेतवाराहकल्पे प्रथमाह्नि अह्नो द्वितीययामे** (पहले दिन के) **चतुर्दशमन्वन्तराणां मध्ये सम्प्रतिवैवस्वतनाम सप्तममन्वन्तरे** (सातवें मन्वन्तर के) **युगानां**

त्रिध्ने याते अष्टाविंशतिचतुर्युगांतरे (अट्ठाईसवें महायुग के) **कलियुगे कलिप्रथमचरणे** (अर्थात् ई.पू. 3102 से प्रारम्भ हुए कलियुग के पहले चरण में) **त्रयनाभिचक्रे मध्ये तदंतर्वर्तिनि चतुर्दशभुवनतलांतर्गतेऽस्मिन् मार्त्तण्डाऽऽदिग्रहमण्डले** (अर्थात् आकाशगंगा के चौदह तारक समूहों में स्थित सौर नामक ग्रहमण्डल में) **भूलोके** (अर्थात् पृथिवी पर) **ब्रह्मावर्तकक्षेत्रे** (अर्थात् ब्रह्मा की भूमि पर) **जम्बूद्वीपान्तर्गते** (अर्थात् एशिया में) **आर्यावर्त्तते** (अर्थात् भूमध्यसागर से पूर्वी तट से लेकर चम्पादेश अर्थात् वियतनाम तक का क्षेत्र) **भारतवर्षे** (अर्थात् अपगणस्थान या अफगानिस्तान से लेकर ब्रह्मदेश या बर्मा या आजकल के म्याँमार तक का क्षेत्र) **भरतखण्डे** (भारत के) **पुण्यअमुकप्रदेशे अमुकग्रामे** (.....प्रांत के......शहर या कस्बा या गाँव में) **श्रीमन्नृपविक्रमार्कसमयातीतसंवत् अमुकसहस्रअमुकशतअमुकतमे वर्षे प्रभवादिषष्टिसंवत्सराणां नाम्नि मध्ये वर्तमाने यथानाम अमुकसंवत्सरे तद्द्वयायनेषु मध्ये अमुकायने वसन्तादिषड्ऋतुषु मध्ये अमुकऋतौ महामाङ्गल्यप्रदे मासानाम् उत्तमे चैत्रादिद्वादशमासानां मध्ये अमुकमासे कृष्णशुक्लयोर्मध्ये अमुकपक्षे पञ्चदशतिथीनां मध्ये अमुकतिथौ तद् शुभसप्तवासराणां मध्ये अमुकवासरे सप्तविंशतिनक्षत्राणां मध्ये अमुकनक्षत्रे सप्तविंशतियोगानां मध्ये अमुकयोगे सप्तकरणानां मध्ये अमुककरणे द्वादश लग्नानाम् मध्ये अमुकलग्ने च त्रिंशमुहूर्तमध्ये अमुकमुहूर्ते तद्धुक्ते यथासंख्यानाम् क्षणे प्रारम्भधर्मसंस्थापनार्थं अनुष्ठानाय अमुकगोत्रे प्रवरे च अमुककुलस्य उत्पन्नः श्रीमन् नामाहं.....आत्मजः......तद् सौभाग्यवती भार्या......**(अर्थात् वर्तमान पञ्चाङ्ग के अनुसार वर्ष, अयन, ऋतु, माह, पक्ष, दिन व समय, मुहूर्त व क्षण विशेष में.........कुल/गोत्र में उत्पन्न श्री.......व श्रीमती....... के पुत्र व उनकी सौभाग्यवती भार्या द्वारा किए जा रहे इस संस्कार.......)[8]।

इस प्रकार इस संकल्प-पाठ में हम न केवल पूरी वैज्ञानिक कालगणना हरेक व्यक्ति को स्मरण करवाते हैं, बल्कि साथ ही उसका इतिहास और भूगोल भी उसे स्मरण करवाते हैं।

हमें यह ध्यान रखना होगा कि काल के इतने बृहत्तर परिमाण की गणना करने के बाद भी हम भारतीय कभी भी यहाँ पर सृष्टि का अंत नहीं मानते थे। हम यह मानते थे कि दोनों परार्ध बीतने के बाद फिर से नया परार्ध प्रारम्भ होता है। इस प्रकार सृष्टि बारम्बार बनती और नष्ट होती रहती है। यह देखना रोचक हो सकता है कि अघमर्षण सूक्त में ही **काल की इस प्रवहमान उत्पत्ति के सिद्धान्त** का भी वर्णन किया गया है। इस सूक्त के पहले दो मंत्रों में कहा गया है–

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणिविदधदद्विश्वस्य मिषतो वशी॥[9]

पहले मंत्र में सृष्टि के प्रारम्भ में यानी ब्रह्माण्ड की रचना किए जाने के प्रारम्भ में रात्रि के उत्पन्न होने की बात की है। इसका सीधा तात्पर्य है कि ब्रह्माण्ड-रचना प्रारम्भ होने से पहले जो संतुलन की अवस्था थी, उसमें रात्रि यानी अंधकार नहीं था। तप के द्वारा उसमें जब असंतुलन पैदा किया गया, तब अंधकार उत्पन्न हुआ। क्या हम इसमें ऊष्मा-गतिकी यानी थर्मडायनमिक्स के दूसरे सिद्धान्त को देख सकते हैं? बिल्कुल, ऊपर हम देख चुके हैं कि इस सिद्धान्त के अनुसार संतुलन की अवस्था बनने पर सभी का तापमान समान हो जाएगा और इससे हरेक ओर केवल चमकता प्रकाश ही होगा। इसी बात को अघमर्षण सूक्त का ऋषि भी स्पष्ट कर रहा है। इसके बाद दूसरे मंत्र में संवत्सर यानी वर्ष के उत्पन्न होने की बात कही गई है। वर्ष का प्रारम्भ होता है पृथिवी के सूर्य के चक्कर लगाने से। यदि पृथिवी सूर्य का चक्कर न लगाए, तो वर्षरूपी काल की गणना होगी ही नहीं। संवत्सर के बाद दिन और रात के उत्पन्न होने की बात कही गई है, यानी कि पृथिवी अपने अक्ष पर भी घूमने लगती है। यदि पृथिवी अपने अक्ष पर नहीं घूमे, तो दिन और रात भी नहीं होंगे। यही काल की उत्पत्ति का सिद्धान्त है। इन तीनों ही मंत्रों को संध्या करते समय भारतीय दोनों समय पाठ करते हैं। काल की इस चक्रीयता और सापेक्षता को समझाने के लिए भारतीय ग्रंथों में अनगिनत कथाएँ हैं। उदाहरण के लिए द्वापरयुग के अंत में हुए बलराम की पत्नी रेवती की कथा[10] न केवल काल की निरन्तरता को बताती है, बल्कि वह उसकी सापेक्षता को भी स्पष्ट करती है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि आधुनिक विज्ञान अभी काल की सही अवधारणा तक ही नहीं पहुँच पाया है। इसमें अभी तक पाश्चात्यों का मजहबी अंधविश्वास यानी ईसाई-अंधविश्वास हावी है। वे अभी भी बाइबिल की स्थापना, कि सृष्टि की उत्पत्ति ईसा से 4004 वर्ष पहले हुई थी, को ही येन-केन-प्रकारेण स्थापित करने में जुटे हुए हैं। हालांकि हम आगे देखेंगे कि उन्हें अंततः यह स्वीकार करना पड़ा कि पृथिवी की आयु लाखों-करोड़ों वर्षों की है, और तब उन्होंने मानव-सभ्यता के इतिहास को इसी सीमा में बाँधने का प्रयास किया और आज भी कर ही रहे हैं।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ :

1. वर्तमान विज्ञान केवल उन्हीं चीजों के प्रत्यक्ष परीक्षण पर आधारित है, जिनकी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई होती है और जिन्हें मापा जाना सम्भव होता है। काल वास्तव में कोई भौतिक वस्तु नहीं है, जिसकी इयत्ता करके दिखाया जा सके। यह एक अनुभूति है। इसलिए बहुधा इसे भ्रम भी मान लिया जाता है। परंतु वास्तव में यह गति की एक अनुभूतिमात्र है।
2. इलेवन पिक्चर्स ऑफ़ टाइम, भूमिका, पृ. 13
3. वही, भूमिका, पृष्ठ 19
4. http://www.hawking.org.uk/the-beginning-of-time.html
5. वही
6. ऋग्वेद, 10.190.3
7. इतिहास दर्शन, पृ. 3-4
8. जगत् का यथार्थ, भाग 1, पृ. 130-131
9. ऋग्वेद, 10.190.1-2
10. महाभारत में राजा काकुदमी की पुत्री रेवती की कहानी आती है। प्राचीन काल में भारत के कुशस्थली नामक राज्य (आधुनिक द्वारका, गुजरात) में काकुदमी नामक राजा राज्य करते थे। राजा की एक अत्यत सुंदर पुत्री

थी, जिसका नाम रेवती था। जब रेवती विवाह योग्य हुई तो राजा काकुदमी को उसके विवाह की चिंता हुई। अपनी असाधारण कन्या के लिए कोई भी वर उन्हें उपयुक्त न लगता था। अनतः राजा काकुदमी ने अपनी कन्या रेवती के साथ ब्रह्मलोक जाने का निश्चय किया। उन्हें आशा थी कि स्वयं परमपिता ब्रह्मा ही रेवती के लिए कोई सुयोग्य वर बता सकते हैं। जब राजा काकुदमी ब्रह्मलोक पहुँचे, तो ब्रह्मा जी की सभा में गन्धर्वों द्वारा नृत्य-संगीत की प्रस्तुति हो रही थी। राजा काकुदमी ने विचार किया कि इस कार्यक्रम के समाप्त होने के बाद ब्रह्मा जी से वह अपना आशय प्रकट करेंगे। कार्यक्रम समाप्त होने के बाद राजा काकुदमी ब्रह्मा जी के समक्ष पहुँचे, उन्हें झुककर प्रणाम किया और उनसे अपने आने का कारण व्यक्त किया। साथ ही राजा काकुदमी ने कुछ सम्भावित वरों की एक सूची भी ब्रह्मदेव को दी। ब्रह्मा जी उनकी बात और वह सूची देखकर हँसने लगे। ब्रह्मदेव बोले, ''हे राजन! समय की गति अद्भुत होती है। ब्रह्माण्ड के अलग-अलग स्थानों में समय की गति अलग-अलग होती है। जितनी देर आपने ब्रह्मलोक में प्रतीक्षा की और समय व्यतीत किया, उतने समय में पृथिवी पर 27 युग बीत चुके हैं। अब यह सूची किसी काम की नहीं; क्योंकि ये सभी वर तो पृथिवी पर वर्षों पूर्व मर चुके हैं।'' इसके बाद ब्रह्मदेव बोले– ''हे राजन! अब आप पिता-पुत्री ही शेष बचे हो, पृथिवी पर आपका राजपाट, घर-परिवार, मित्रगण, सेना, धन-सम्पत्ति भी कभी के नष्ट हो चुके हैं। आपको तो अब जल्द ही अपनी कन्या का विवाह करना पड़ेगा, नहीं तो कलियुग आनेवाला है। राजा काकुदमी यह सब जानकर दंग रह गये और किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गये। तब ब्रह्मा जी ने उन्हें दिलासा दिया और बताया कि इस समय पृथिवी पर स्वयं जगतपालनकर्ता भगवान् विष्णु कृष्ण और बलराम के रूप में विद्यमान हैं। ब्रह्मदेव ने कहा कि आपकी कन्या रेवती के लिए बलराम जी ही सबसे उपयुक्त वर हैं। इसके पश्चात् राजा काकुदमी कन्या रेवती के साथ पृथिवी पर आ गये। पृथिवी पर आकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। उनके अनुसार तो उन्हें आने-जाने में केवल कुछ समय ही लगा था, लेकिन अब तो पूरी पृथिवी का स्वरूप ही बदल चुका है। पृथिवीलोक का मौसम, वातावरण और बनावट अब पहले जैसे न थी और मनुष्यों के गुणों, आकार और बुद्धि में भी भारी परिवर्तन आ चुका था। यह कथा बताती है कि ऋषियों को ब्रह्माण्ड के पिण्डों की गतियों और उसके कारण काल के निर्धारण में होनेवाले अन्तर का परिज्ञान था।

❖❖❖

इतिहास-पुनर्लेखन : मिथकों से सच तक

व्यालोक पाठक*

इतिहास का पुनर्लेखन एक ऐसा विषय है जिसकी ज़रूरत को भारतीय राजनीति में वामपंथी से लेकर दक्षिणपंथी तक दोनों धड़े बराबर महसूस करते रहे हैं, हालांकि यह मसला दक्षिणपंथी धड़े के दिल के कुछ ज़्यादा करीब रहा है। जब-जब देश में दक्षिणपंथी सरकार आयी है, इतिहास के पुनर्लेखन पर नये सिरे से बहस खड़ी की गई है। इसमें दिक्कत क्या है? यदि अब तक का इतिहास सेलेक्टिव यानी पक्षधरता के साथ लिखा गया है, तो तब एक राष्ट्रवादी इतिहास लिखने का विरोध क्यों होना चाहिए?

मौजूदा दौर में भी भारत के इतिहासलेखन की प्रवृत्ति पर सवाल उठे हैं, इसकी श्रृंखला को दुरुस्त करने की मांग उठी है और यह जायज ही उठी है। इतिहास का पुनर्लेखन आख़िर क्यों ज़रूरी है, इसे समझना ही होगा। इतिहास का पुनर्लेखन दो ही कारणों से होता है। यह अतीत की घटनाओं की अनुचित व्याख्याओं को दुरुस्त करने के लिए अनिवार्य है, तो कई बार यह विचारधारा के स्तर पर हुई चूक को दुरुस्त करने के लिए भी ज़रूरी होता है। प्लेटो ने लिखा था कि कहानियाँ सुनानेवालों के हाथों में सत्ता होती है। इस कथन का आशय यह नहीं कि इतिहास हमारा सत्ताधारी वर्ग ही लिखता है? क्या यह नहीं मान लेना चाहिए कि सत्ताधारी वर्ग जब भी इतिहास लिखेगा, तो वह शोषितों को फुटनोट पर तो क्या, हाशिए में भी जगह नहीं देगा?

भारत में सन्दर्भों को उसी के अनुरूप लेना होगा, तभी शायद समुचित व्याख्या हो सकेगी। भारत में इतिहासलेखन भी इसीलिए मिथक और तथ्य की सीमारेखा के बीच झूलने लगता है कि यहाँ यूरोपीय और अरबी इतिहासकारों की तरह तिथिवार (क्रोनोलॉजिकल) लिखने में लोगों की दिलचस्पी नहीं रही। यहाँ इतिहास या संस्कृति में जब कोई बड़ा झटका लगा, तभी उसके परिवर्तन की बात भी दर्ज़ हुई। ज़ाहिर तौर पर टाइम यहाँ अंग्रेज़ी का समय न रहकर 'काल' के अर्थ में है, जिसका क्षण-क्षण परिवर्तन नहीं होता और शायद इसीलिए हमारा इतिहास भी तथ्य, मिथक और कपोल-कल्पना तक की यात्रा कर जाता है।

भारतीयों की इतिहास-दृष्टि भी अलग थी। उन्होंने समय को केवल 'टाइम' में न

* व्यालोक पाठक पत्रकार एवं लेखक हैं।

बाँधकर 'काल' में बाँधा था। अधिकांश उलटफेर तो शब्दों को नहीं समझने की वज़ह से ही है। काल में सांस्कृतिक-सामाजिक आचार समाहित हो जाते हैं। इसीलिए, भारतीय इतिहास-लेखन में अनायास ही तीन-चार सौ वर्षों तक की खाई भी आ सकती है। इसके अलावा, नामवरी से परहेज और श्रुति-परम्परा का होना भी भारतीय इतिहासलेखन की भिन्नता में है। वेदों में जैसे नाम नहीं दिए गए हैं, रचयिता के, उसी तरह उनको श्रुति-परम्परा से याद भी किया जाता था। इसीलिए भारतीयों ने पश्चिमी विद्वानों की तरह न तो कभी ऐतिहासिक दस्तावेज लिखने में रुचि दिखाई, और न ही उन्हें सहेजने में। इसका मतलब यह नहीं था कि भारतीयों ने इतिहास लिखा ही नहीं था, या उन्हें आता ही नहीं था।

ज्ञान की किसी भी शाखा की तरह, इतिहास का भी सबसे ज़रूरी तत्त्व सत्य की तलाश है। इसके लिए तथ्यों और तत्त्वों की सम्यक् व निर्मम आलोचना ज़रूरी है। किसी भी तरह का पूर्वाग्रह, इतिहास को देखने की हमारी दृष्टि को धुंधला कर सकता है। हरेक राष्ट्र का इतिहास तो दरअसल पूरी दुनिया के इतिहास का हिस्सा है, लेकिन जब कोई अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए एकतरफ़ा सबूतों और तथ्यों को प्रस्तुत करता है, तो उसके साथ ही इतिहासलेखन के उस दौर पर भी सवाल उठ जाते हैं। यही बात किसी ख़ास समुदाय, क्षेत्र या धर्म आदि के बारे में भी कही जा सकती है।

आधुनिक भारत का इतिहास भी मुख्यतः उन ब्रिटिश विद्वानों की देन है, जिनकी मुख्य दिलचस्पी इस देश के राष्ट्रीय गौरव को ख़त्म कर देने में थी। इसके साथ ही, भारत में इतिहास की समझ और उसके लेखन के प्रति समझ और पश्चिमी इतिहासकारों के बोध के अंतर को भी समझना होगा। विदेशियों ने भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अनदेखा किया। अपने औपनिवेशिक हित के कारण अंग्रेज़ भारतीय धार्मिक ग्रंथों, दंतकथाओं और पौराणिक ग्रंथों आदि में उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों के साथ न्याय करना तो दूर, उन्होंने उसे उपहास का पात्र बना दिया। भारत को उपनिवेश बनाना उन्हें उचित ठहराना था, इसलिए भारतीय इतिहास तथा साहित्य को हीन साबित करना उन्हें ज़रूरी लगता था।

उपनिवेशवादी अंग्रेज़ लेखकों ने भारत के इतिहास और साहित्य को नकारकर ही अपनी सत्ता के ख़िलाफ़ विद्रोह को दबाया। इतना ही नहीं, उन्होंने भारतीयों में इतनी हीन भावना भर दी कि बाद में भी जो इतिहासकार हुए, उन्होंने भी अपनी एकांगी और अधूरी दृष्टि से ही भारतीय इतिहास को लिखा। अंग्रेज़ों और उनके बाद उनके पिट्ठुओं का लिखा भारत का साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जो भी इतिहास है, वह एकांगी और भ्रम पैदा करनेवाला है।

वस्तुतः, अपनी औपनिवेशिक दृष्टि को ज़ायज ठहराने के लिए अंग्रेज़ों ने सारा घालमेल किया। अंग्रेज़ कोई महान् जाति भी नहीं थे, जैसा कि बताया जाता है उनके आने के बाद ही असभ्य भारतीय सभ्य हुए। यहाँ तक कि रामविलास शर्मा भी उनको कोसते हुए लिखते हैं, 'अंग्रेज़ी राज ने यहाँ शिक्षण व्यवस्था को मिटाया, हिंदुस्तानियों से एक रुपए ऐंठा तो उसमें से छदाम शिक्षा पर खर्च किया। उस पर भी अनेक इतिहासकार अंग्रेज़ों पर बलि-बलि जाते हैं।'[1]

भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन सबसे ज़रूरी इसलिए है कि इसकी नींव ही सबसे बड़े

झूठ पर रखी हुई है। वह, यह कि आर्य भारत के मूल निवासी नहीं थे। दूसरा, कारण यह है कि इस इतिहास पर कोई भी सवाल उठाते ही आपको प्रतिक्रियावादी, हिंदू राष्ट्रवादी और न जाने क्या-क्या कह दिया जाएगा। तीसरा, कारण यह है कि मिथकों के जवाब में हमें मिथक ही सुनाए गए हैं। चौथा, कारण यह है कि तथ्यों और सबूतों की रोशनी में जब आप बात करेंगे, तो वामपंथी-काँग्रेसी धड़े के तथाकथित इतिहासकार आपकी बातों का कोई जवाब देने ही नहीं आएँगे और आएँगे, तो कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा जोड़ेंगे।[2]

आर्यों के विदेशी होने का सारा मसला भाषावैज्ञानिक तरीके पर है, लेकिन यह न भूलें कि यह सिद्धान्त विलियम जोन्स ने दिया था और 17वीं शती से पहले इस सिद्धान्त का कोई नामलेवा नहीं था। (भारत में अंग्रेज़ी राज की स्थापना के दौर से इसको जोड़कर देखें)। दूसरी, बात यह कि अगर आर्य कहीं बाहर से आए थे, तो उन्होंने समस्त वेदों में कहीं भी एक बार अपनी जन्मभूमि को क्यों नहीं याद किया है? तीसरी बात, वेदों में जिस मुंजवंत पर्वत का उल्लेख है, वह तो पंजाब में पाया जाता है।[3] चौथी और सबसे अहम बात, प्रख्यात मार्क्सवादी इतिहासकार रामविलास शर्मा भी इस मिथ को तोड़ते हैं। वह लिखते हैं, 'दूसरी सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व में जब बहुत-से भारतीय जन पश्चिमी एशिया में फैल गए, तब ऐसा लगता है, उनमें द्रविड़ भी थे। इसी कारण ग्रीक आदि यूरोप की भाषाओं में द्रविण भाषा तत्त्व मिलते हैं यथा तमिळ परि (जलना), ग्रीक पुर (अग्नि), तमिळ अत्तन (पीड़ित होना), ग्रीक अल्गोस (पीड़ा), तमिळ अन (पिता), ग्रीक अत्त (पिता)। यूरोप की भाषाओं में 12 से 19 तक संख्यासूचक शब्द कहीं आर्य-पद्धति से बनते हैं, कहीं द्रविड़-पद्धति से।'[4]

यहाँ तक कि मार्क्सवादियों के पवित्र अख़बार 'द हिंदू' में खुद रोमिला थापर स्वीकार कर चुकी हैं कि आर्य-आक्रमण का सिद्धान्त एक कपोल-कल्पना है और वह उससे इत्तफाक नहीं रखती हैं। उन्होंने साफ़ लिखा है, 'I have stated categorically in "A History of India," Vol. I, published in 1966, that Aryan is a linguistic term. I discussed this in greater detail in my presidential address to the Ancient Indian History Section of the Indian History Congress in Varanasi in 1968, where I argued that Aryan is a linguistic label and not a racial category.'[5]

पाँचवीं बात यह है कि अगर आर्य कहीं और से यहाँ आए (जो अक्सर कहा जाता है, रूस या ईरान से आए) तो इतनी बड़ी यात्रा के दौरान कुछ तो अवशेष कहीं होने चाहिए। कहीं कोई हड्डी, कोई राख। लेकिन कहीं कुछ नहीं है। अब तो ख़ैर, हरियाणा की राखीगढ़ी में मिले कंकाल का डीएनए टेस्ट भी आर्य-आक्रमण के सिद्धान्त को छिन्न-भिन्न कर चुका है।[6]

भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की ज़रूरत इसलिए भी है कि अंग्रेज़ों ने हमें जिस तरह से हीन भावना से ग्रस्त किया, हम पर बर्बर और असभ्य होने की मुहर लगा दी, हमें बताया कि उन्होंने हमें ज्ञान की रोशनी दी, उससे उबरकर हमें अपनी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय विरासत को सहेजने की ज़रूरत है। यह काम तथाकथित स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद ही हो जाना चाहिए था, हालांकि 'दुर्घटनावश हिंदू' और देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने दूसरे धड़े का

चयन किया और यही हमारी बौद्धिक बीमारी का कारण है। 1952 में जब राष्ट्रवादी और मार्क्सवादी दृष्टिकोण से इतिहासलेखन में किसी एक को चुनना था, तो नेहरू ने ताराचंद को आर.सी. मजूमदार की जगह चुनकर यह साबित कर दिया कि उन्हें इतिहास में तथ्यों और सबूतों की जगह व्याख्या और विश्लेषण का मार्ग अधिक पसंद है।[7] उस समय से वामपंथी दीमक जो भारतीय इतिहासलेखन में लगे, उसी का परिणाम है कि लगभग हज़ार वर्षों तक देश में रहनेवाले चोल, चेदि, पाण्ड्य या फिर विजयनगर का साम्राज्य तो तीन से चार पन्ने में सिमट जा रहा है, लेकिन केवल तीन शताब्दियों का मुग़लकाल इतना महत्त्वपूर्ण है कि उस पर अलग से किताबें लिखी जाती हैं, अलग से वह इतिहास का एक हिस्सा ही हो जाता है।

इतिहास का पुनर्लेखन इसलिए ज़रूरी है कि हम एक राष्ट्र के तौर पर गर्वोन्नत हो सकें, ताकि हमें जो वामपंथी कूड़ा पढ़ाया जाता है कि यह देश अंग्रेज़ों ने बनाया, हमें उनका शुक्रगुजार होना चाहिए और जो नक्सली आज भी इस देश को 17 देशों का समुच्चयमात्र मानते हैं, उनको हम गरजकर उत्तर दे सकें कि हमारी राष्ट्रीय चेतना तो वैदिक काल से जीवित है और हम शताब्दियों पुराने राष्ट्र हैं। हाँ, यूरोप के अंधकार में जीते कबीले जब तथाकथित सभ्य बने, तो उनसे हमें सनद लेने की ज़रूरत नहीं।

कुछ विद्वान हास्य के लहजे में सवाल उठाते हैं कि जब 'नेशन-स्टेट' की अवधारणा ही महज दो-ढाई शती पुरानी है, तो आपका यह गौरवशाली भारतवर्ष एक 'राष्ट्र' के तौर पर कहाँ और कैसे आ गया? ऐसे विद्वानों को इस श्लोक का भी सन्दर्भ सहित अर्थ बता देना चाहिए, जो विष्णुपुराण में आया है– **उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्, वर्षं तद्भारतं नाम भारती तत्र सन्ततिः**[8] यदि राष्ट्र की अवधारणा ही नहीं थी, तो भारतवर्ष की एक राष्ट्र के तौर पर इतनी विशद व्याख्या का भी कोई कारण नज़र नहीं आता है। ऋग्वेद में भी 'राष्ट्र' शब्द का उल्लेख 8 बार हुआ है और यह बात प्रगतिशील विद्वान् आर.एस. शर्मा भी अपनी किताब ('प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ') में स्वीकारते हैं। यह लेखक यहाँ केवल एक मन्त्र उद्धृत करना चाहता है– **त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः। अष्टापदीभिराहुतः।**[9] यानी भारत में सभी विषयों में अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान्, गायों और बैलों के द्वारा खेती कर समृद्ध और सुखी हैं। वे आठ सत्य-असत्य के निर्धारित करनेवाले नियमों के सहारे अपना जीवन जीते हैं। इसी ऋग्वेद में 'राष्ट्र' का अर्थ संगमन का भी है– **अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम**।[10] मोटे तौर पर राष्ट्री का अर्थ एक ऐसी इकाई हुआ, जो आपस में मिली-जुली हो और खुद ही में एक जगह भी है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी 'राष्ट्र' का उल्लेख हुआ है। यहाँ चूंकि 'देश' का प्रयोग नहीं हुआ है, इसलिए यह मान लेने में कोई हर्ज़ नहीं है कि वैदिक ग्रंथों में राष्ट्र की ही प्रमुखता मिली है। देश को स्थानवाची मानते हुए उसके साथ राष्ट्र का विभेद किया गया है; क्योंकि वैदिक ऋषि राष्ट्र का दायित्व सभी राष्ट्रीय 'जन' का कर्तव्य मानता है– **वयं राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहिताः**।[11]

राष्ट्र से आगे बढ़कर जब हम 'राज्य' की बात करते हैं, तो महाभारत का रचनाकार उसको भी बड़े सधे अंदाज़ से समझाता है। महाभारत के शान्तिपर्व में 'राज्य'-सम्बन्धी जिज्ञासा का शमन किया गया है, जब शरशैय्या पर लेटे भीष्म पितामह से युधिष्ठिर पूछते हैं कि राजा, राज्य

आदि के निर्माण का पितामह उनको सूत्र बताएँ, कथा बताएँ। महाभारतकार के शब्द हैं– **न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्डो न दाण्डिकः। धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।**[12] यानी, न पहले कोई राज्य था, न ही राजा था। सभी जन एक दूसरे की 'धर्म' से रक्षा कर लेते थे। ज़ाहिर तौर पर युधिष्ठिर ने फिर जिज्ञासा की कि आख़िर यह स्थिति बदली कैसे और क्यों? इसके उत्तर में भीष्म 'मत्स्य-न्याय' का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि बड़ी मछली ही छोटी को खा रही थी, इसलिए राजा आया, फिर राज्य आए, उसके साथ नियम (आज के क़ानून) आए और फिर उन नियमों को भंग करनेवालों के लिए दण्ड की व्यवस्था आयी। इसीलिए, राज्य बना, और यह महीन भेद (राष्ट्र और राज्य के बीच का) हमें समझना चाहिए।

आज राजनीतिशास्त्र हमें इसी 'राज्य' या 'नेशन-स्टेट' के बारे में बताता है। यह वैसी राजनीतिक धारणा है, जो दण्ड के बल पर भूगोल को साधती है और इतिहास को चमकाती है। एर्न्स्ट बार्कर नामक राजनीतिशास्त्री क्या कहते हैं, जरा देखिए : "The state is a legal association: It exists for law: it exists in and through law: we may even say that it exists as law. The essence of the State is a living body of effective rules: and in that sense the State is law."[13]

यहाँ सीधा-सा सवाल यह है कि इतिहास के नाम पर हमें जो 'मनोहर कहानियाँ' पढ़ाई गई हैं, उसका विरोध करना या उसे काटना कहाँ से ग़लत है? यदि रामचंद्र गुहा को इतिहासकार माना गया है, तो सीताराम गोयल को क्यों नहीं माना जा सकता है? क्या ये जो नामचीन इतिहासविद् हैं (थापर, बिपन चंद्र, इरफ़ान हबीब आदि) बता सकते हैं कि रामजन्मभूमि मामले की ग़वाही में इतना झूठ किसलिए बोला गया था[14] और यही लोग आज भी भारतीय इतिहास के नीति-नियन्ता हैं। इन पर कोई विश्वास करे तो क्यों और कैसे?

हमें सबसे पहले तो प्रश्न पूछने की ज़रूरत है। आख़िर, प्रश्न पूछने को मनाही करना किस इतिहासलेखन का हिस्सा है? हमें यह मान लेने में हर्ज़ नहीं कि ताजमहल वही है, जो हमें बताया गया है? लेकिन, अगर हम जानना चाहें कि आख़िर शाहजहाँ के पहले के काग़ज़ातों में उसका उल्लेख क्यों है, तो इसमें किसी को क्यों आपत्ति है? ताज के बाहरी हिस्से में लगी लकड़ी की कार्बन डेटिंग से इसकी उम्र 11वीं शती पता चलती है और शाहजहाँ के दरबारी काग़ज़ों में कहीं भी इससे सम्बन्धित उल्लेख नहीं, यहाँ तक कि कई यूरोपीय पुरातत्त्वविदों और स्थापत्यकारों ने इसको हिंदू मन्दिर जैसा बताया है, तो इन सवालों को क्यों उड़ा दिया जाता है? इन पर चर्चा करने और इनके सही या ग़लत ज़वाब देने से किसको और क्यों आपत्ति है? यहाँ यह बताना प्रासंगिक होगा कि आगरे के लाल किले को भी शाहजहाँ द्वारा बनाया बताया जाता रहा है, जबकि वह मूलतः सिकरवार-राजपूतों ने बनाया था (यह भी यूपीए शासनकाल में लिखी एनसीईआरटी की किताब में बदला गया है)।[15] जब, तथ्यों के आलोक में यह जानकारी बदल सकती है, तो बाकी क्यों नहीं?

इतिहास का पुनर्लेखन इसलिए ज़रूरी है कि हमें पता चल सके कि हमारे यहाँ स्त्री-शिक्षा की समृद्ध परम्परा रही है। हमारी ऋषिकाएँ लोपा, अपाला, घोषा आदि रही हैं, जो कई मंत्रों

की द्रष्टा रही हैं। हमें इतिहास फिर से लिखना चाहिए,ताकि पता चले कि मुरैना में चौंसठ योगिनी का एक मन्दिर है, जिसे शिव-संसद कहते हैं, जो नवी-दसवीं शती का है और जो बिल्कुल उसी तरह का है, जैसी आज की भारतीय संसद। तो, क्या यह मुमकिन है कि ल्युटयंस की 20वीं सदी की इमारत की नकल नवीं सदी के लोगों ने कर ली?

हमें इतिहास फिर से लिखना चाहिए, ताकि झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, रानी चेन्नम्मा, रानी अब्बक्का आदि के बारे में पता लगे। ताकि, हम एक बार में यह मान लें कि हम किसको मिथक मानेंगे और किसे इतिहास? यदि महाभारत मिथक है, तो फिर एकलव्य की कहानी भी मिथक क्यों नहीं? रामायण मिथक है, तो केवट, शंबूक और शबरी की कहानी क्यों नहीं मिथक है? यदि ये मिथक नहीं हैं, तो सारा कुछ इतिहास क्यों नहीं है?

हमें इतिहास फिर से लिखना होगा ताकि जान सकें कि गोवा के सभी हिंदुओं का क्या हुआ ? उनकी मूर्तियाँ, रहन-सहन के तरीके, बर्तन, जेवर जैसी कोई भी चीज वहाँ क्यों मौजूद नहीं है? हमें 14वीं सदी में मौजूद चोल-राजाओं द्वारा निर्मित सूर्य घड़ी के बारे में जानने के लिए इतिहास को फिर से लिखना ही होगा। हमें नालन्दा, वैशाली, चोल, पाण्ड्य, चालुक्य आदि राजाओं, अपनी मूर्तियों-भित्तियों-शिल्पों-महलों को उजागर करना ही होगा। हमें अपनी गौरवशाली परम्परा को याद करना होगा, ताकि हम अकारण हीन-भावना से ग्रस्त न रहें। ताकि, कालिदास को 'भारत का शेक्सपीयर' न कहा जाए, शेक्सपीयर को 'ब्रिटेन का कालिदास' कहा जा सके; समुद्रगुप्त को 'भारत का नेपोलियन' नहीं, नेपोलियन को 'फ्रांस का समुद्रगुप्त' कहा जा सके।

हमें इतिहास को फिर से लिखना होगा, ताकि फिर किसी नेताजी की मौत पर परदा न डाला जा सके? ताकि, उस स्वातन्त्र्यवीर की फिर से दो दशकों तक जासूसी न की जा सके। ताकि, हमारे नायकों का सही ढंग से चुनाव हो सके। ताकि, हम जान सकें कि बर्मा की सीमा पर आज़ाद हिंद फौज़ के 2,000 से अधिक सिपाही मारे गए थे, और उनका उल्लेख तक आज भी नहीं होता है।

इन तथ्यों को देखें तो, पाएँगे कि इतिहास के पुनर्लेखन की ज़रूरत तो है और हमें यह काम बहुत पहले ही शुरू कर देना चाहिए था। लेकिन सवाल यह है कि क्या मानव संसाधन विकास मंत्रालय विचारधारा के आग्रहों को परे रखते हुए खुले दिमाग से यह काम कर पाने में सक्षम है? हमें, फिलहाल किसी भी तरह के पूर्वाग्रह से मुक्त एक राष्ट्रीय इतिहास की आवश्यकता है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ :

1. सन् सत्तावन की राज्य क्रान्ति और मार्क्सवाद, पृ. 67
2. यह लेखक जेएनयू का है, वह भी उस दौर का, जब पहली एनडीए सरकार बनी थी, इसलिए पाठक समझ सकते हैं कि वहाँ इतिहास के नाम पर कितनी बहस हुई होगी। बहरहाल, इस लेखक को अच्छी तरह याद है कि इतिहास के एक शोधार्थी ने जब 'आर्यन इनवेजन' के मसले पर परचा लिखकर वामपंथी गुब्बारे की हवा

निकाल दी थी, तो एसएफआई ने उसका जवाब देने के लिए देश के एक नामचीन इतिहासकार (?) को बुला लिया था।

3. 'संस्कृति के चार अध्याय', रामधारी सिंह 'दिनकर'
4. भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, भाग , पृ. 673
5. https://www.thehindu.com/2004/03/22/stories /2004032201661001.htm
6. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/harappan-site-of-rakhigarhi-dna-study-finds-no-central-asian-trace-junks-aryan-invasion-theory/articleshow/64565413.cms?utm_source=AMPusers&utm_medium=twittershare&utm_campaign=socialsharebutton&from=mdr
7. https://ibn7.in/india-news-hindi/item/85745-news
8. विष्णुपुराण, 2.3.1
9. ऋग्वेद, 2.7.5
10. वही, 10.125.3
11. यजुर्वेद, 9.23
12. महाभारत, शान्तिपर्व, 59.14 (गीताप्रेस-संस्करण)
13. Ernest Barker - Principles of Social and Political Theory, p.89
14. http://newsloose.com/2018/09/27/kk-muhammad-book-on-ayodhya-ram-mandir-babri-issue
15. एनसीईआरटी, सामाजिक विज्ञान, कक्षा 7

❖❖❖

व्यक्तित्व

एक निर्भीक इतिहासविद् वैद्य गुरुदत्त

सभ्यता संवाद प्रतिनिधि

आजकल एक शब्द काफ़ी प्रचलन में है– 'जेनरेशन गैप' यानी पीढ़ियों का अन्तर। आख़िर यह जेनरेशन गैप क्या है? क्यों आज की पीढ़ी अपनी पिछली पीढ़ी से स्वयं को अलग मानने लगी है? यह अंतर कब से आने लगा है? क्या प्राचीन काल से नयी पीढ़ियाँ इसी प्रकार पुरानी पीढ़ियों को इसी प्रकार नकारती रही थीं? इस बात को समझना हो तो हमें वैद्य गुरुदत्त (1894-1989) के साहित्य को पढ़ना चाहिए। वैद्य गुरुदत्त एक लम्बे समय तक देश की परिस्थितियों, इतिहास, समाज, राजनीति आदि सभी के अन्वेषक रहे हैं, उन्होंने काफ़ी नज़दीक से हरेक चीज को देखा है, उसका अध्ययन किया है और उस पर विश्लेषणात्मक टिप्पणियाँ की हैं। देश के वर्तमान के साथ-साथ वह देश के अतीत से भी परिचित हैं। अपने शास्त्रों का उन्होंने गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है और वह भारत के उस वैशिष्ट्य से भी भली-भाँति परिचित हैं, जिससे आकर्षित होकर पूरा विश्व शिक्षा ग्रहण करने यहाँ आया करता था और जिसकी चर्चा मुस्लिम कवि इकबाल इन शब्दों में करते हैं– 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी'।

वास्तव में वैद्य गुरुदत्त अपने समकालीन इतिहासकारों, राजनीतिक विश्लेषकों, समाजविज्ञानियों, साहित्यकारों आदि से इस एक बात के कारण ही अलग दिखते हैं। आमतौर पर इतिहासकार शास्त्रों से परिचित नहीं होता, उनकी जानकारी के लिए वह दूसरों के अनुवादों पर निर्भर होता है। राजनीतिक विश्लेषक इतिहास और शास्त्रों की समझ नहीं रखते, वे इसके लिए दूसरों पर निर्भर होते हैं; समाजविज्ञानी को आधुनिक विज्ञान और भारतीय शास्त्रों की समझ नहीं होती, वह भी इसके लिए दूसरों के निकाले निष्कर्षों पर निर्भर होता है। वैद्य गुरुदत्त की विलक्षणता

यही है कि वह न केवल भारतीय इतिहास से भली-भाँति परिचित हैं, बल्कि वह आधुनिक विज्ञान के भी उतने ही अच्छे ज्ञाता हैं। उन्होंने उस समय रसायनशास्त्र में एम.ए. की पढ़ाई की थी। आधुनिक विज्ञान के साथ-साथ भारतीय शास्त्रों पर भी उनकी ज़बरदस्त पकड़ है और सामाजिक मनोविज्ञान को उनसे बेहतर तो कोई समझ ही नहीं सकता।

इसलिए वैद्य गुरुदत्त का साहित्य केवल 1894 से लेकर 1989 तक के उनके 95 वर्ष के कालखण्ड के भारतवर्ष में हुई उथल-पुथलों की ही जानकारी नहीं देता, बल्कि वह हमें उसके कारणों की मीमांसा करना भी सिखाता है, उनके सुधार के उपाय भी बताता है। इस पूरे कालखण्ड में ही वे परिस्थितियाँ निर्माण हुई हैं जिनके कारण आज हम समाज में जेनरेशन गैप की समस्या से दोचार हो रहे हैं। वास्तव में यह जेनरेशन गैप नहीं है, यह एक प्रकार का सभ्यतागत संघर्ष है। हरेक नयी पीढ़ी एक नयी सभ्यता को और अधिक तत्परता से अपनाने और अपनी पुरानी सभ्यता को छोड़ने के लिए प्रयास कर रही है और पुरानी पीढ़ी अपनी पुरानी सभ्यता को पकड़े रखने और नयी सभ्यता के आक्रमण से स्वयं को तथा अपने परिवार को बचाने के लिए प्रयासरत है। इन दो विरुद्ध प्रयासों से उनमें जो टकराव यानी सभ्यतागत संघर्ष पैदा हो रहा है, उसे ही हम साधारण भाषा में 'जेनरेशन गैप' कह देते हैं।

वैद्य गुरुदत्त ने अपने दो उपन्यासों में इसे विशेष रूप से दर्शाया है। पहला उपन्यास है 'दो लहरों की टक्कर' और दूसरा उपन्यास है 'ज़माना बदल गया'। दोनों ही उपन्यासों में वर्ष 1870 में महर्षि दयानन्द के अभियान से लेकर वर्ष 1960 तक के सौ वर्षों में भारत में किस प्रकार सभ्यतागत संघर्ष चलता रहा है, इसका बड़ा ही खूबसूरत वर्णन किया गया है। 'दो लहरों की टक्कर' की भूमिका में ही वैद्य गुरुदत्त इस सभ्यतागत संघर्ष के बारे में बता देते हैं। वे लिखते हैं कि भारत में दो लहरें उठीं। एक लहर थी मैकाले, मैक्समूलर आदि के प्रयासों की जिसमें से राजा राममोहन राय, केशव चंद्र सेन, पं. नेहरू, ब्रह्म समाज, काँग्रेस-जैसे लोग और संस्थाएँ खड़ी हुईं। दूसरी लहर थी महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रयासों की, जिसके कारण लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला हंसराज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज-जैसे लोग और संस्थाएँ खड़ी हुईं। इन दो प्रयासों में टक्कर हुई। उस टक्कर में शासन बल के कारण पहली लहर प्रभावी होती गयी। इस टक्कर की ही गाथा इन दोनों ही उपन्यासों में कही गई है।

वैद्य गुरुदत्त ने केवल उपन्यास लिखकर संतोष नहीं कर लिया। उन्होंने तात्कालिक समस्याओं पर भी पर्याप्त लिखा। उन्होंने इस सभ्यतागत संघर्ष में अपने अस्तित्व की रक्षा के उपाय बताने के लिए भी अनेक पुस्तकें लिखीं। इसके लिए उनकी एक पुस्तक 'स्व अस्तित्व की रक्षा' अवश्य पढ़नी चाहिए। वैद्य गुरुदत्त जानते थे कि इस सभ्यतागत आक्रमण के हथियार हैं– इतिहास, विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति आदि। इसलिए उन्होंने हरेक विषय पर पुस्तकें और उपन्यास– दोनों ही बड़ी संख्या में लिखे। इतिहास पर उनकी पुस्तकें हैं– 'इतिहास में भारतीय परपराएँ', 'भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास' और उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की सूची तो बहुत ही बड़ी है, जिसमें प्रमुख हैं– 'विक्रमादित्य साहसांक', 'लुढ़कते पत्थर', 'दिग्विजय', 'पत्रलता' आदि। विज्ञान पर उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं जिनमें प्रमुख हैं– 'विज्ञान और विज्ञान', 'सृष्टि

रचना' आदि। समाजशास्त्र पर उनकी पुस्तकें हैं– 'धर्म तथा समाजवाद', 'स्व अस्तित्व की रक्षा', 'मैं हिंदू हूँ'। समाजशास्त्र पर उनके उपन्यास कहीं अधिक संख्या में हैं– 'न्यायाधिकरण', 'धरती और धन', 'वाममार्ग', 'कला', 'विलोम गति', 'तब और अब', 'पूर्वग्रह', 'पंकज' आदि। राजनीति भी वैद्य गुरुदत्त के लेखन से अछूती नहीं रही, उनकी राजनीतिविषयक पुस्तकें हैं– 'बुद्धि बनाम बहुमत', 'प्रजातांत्रिक समाजवाद', 'राष्ट्र और राज्य', 'वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान हिंदू राष्ट्र', 'अकाली विद्रोह', 'भारत गाँधी-नेहरू की छाया में' आदि। इनके अलावा वैद्य गुरुदत्त ने भगवद्गीता, उपनिषदों और दर्शन-ग्रंथों के भाष्य भी लिखे हैं। वेदों और वैदिक पदावली पर भी उनकी कई पुस्तकें हैं।

वैद्य गुरुदत्त सन् 1920 के असहयोग आन्दोलन से लेकर सन् 1948 में महात्मा गाँधी की हत्या तक की परिस्थितियों के प्रत्यक्षद्रष्टा रहे। उन्होंने उन घटनाओं का गहन अध्ययन किया। उस काल के सभी प्रकार के संघर्षों को न केवल उन्होंने अपनी आखों से देखा, अपितु अंग्रेज़ों के दमनचक्र, अत्याचारों और अनीतिपूर्ण आचरण को स्वयं गर्मदल के सदस्य के रूप में अनुभव भी किया। युवावस्था से ही राजनीतिज्ञों से सम्पर्क, क्रान्तिकारियों से समीप का सम्बन्ध तथा इतिहास का गहन अध्ययन– इन सबकी पृष्ठभूमि पर वैद्य गुरुदत्त ने 'सदा वत्सले मातृभूमे' शृंखला में चार राजनीतिक अत्यन्त रोमांचकारी एवं लोमहर्षक उपन्यास हिंदी-जगत् को दिए–1. 'विश्वासघात', 2. 'देश की हत्या', 3. 'दासता के नये रूप' और 4. 'सदा वत्सले मातृभूमे!' समाचार-पत्र, लेख, नेताओं के वक्तव्यों के आधार पर उपन्यासों की रचना की गई है। उपन्यासों के पात्र राजनीतिक नेता तथा घटनाएँ वास्तविक हैं। 'पुष्यमित्र' नामक उपन्यास की भूमिका में उन्होंने लिखा है : 'महात्मा गाँधी ने अहिंसात्मक आन्दोलन से एक वर्ष में स्वराज्य ले देने का वचन देकर ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न की कि सी.आर. दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू-जैसे बुद्धिमान वक़ीलों से लेकर गाँव के भंगी, चमार तक महात्मा गाँधी के पीछे लग गये।' इस तरह वैद्य गुरुदत्त के उपन्यासों को पढ़कर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि राजनीति के क्षेत्र में वह राष्ट्रीय विचारधारा के लेखक और छद्म धर्मनिरपेक्षतावादियों के शब्दों में 'साम्प्रदायिक' लेखक थे। वैद्य गुरुदत्त ने सच्चे राष्ट्रवादी की भाँति सदैव देश के कल्याण की इच्छा की और इस मार्ग पर चलते हुए कभी भी यश की कामना नहीं की। भारत-विभाजन की सर्वाधिक निर्भीक समीक्षा यदि किसी इतिहासकार ने की, तो वह वैद्य गुरुदत्त ने।

वैद्य गुरुदत्त में वैचारिक स्पष्टता कमाल की है। वह कम्युनिस्टों के घोर वैचारिक विरोधी हैं। उन्होंने कम्युनिस्ट सिद्धान्तों का जैसी गम्भीर और तथ्यपरक आलोचना की है, वैसी आलोचना किसी और के लेखन में दृष्टिगोचर नहीं होती। इसी कारण वह 'गाँधीवादी समाजवाद'-जैसे विरोधाभासी सिद्धान्त का उद्घोष करने पर पण्डित दीनदयाल उपाध्याय-जैसे व्यक्ति से भी विरोध ले बैठे। इसके लिए उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ-जैसे वृहद् संगठन की नाराज़गी स्वीकार की, परन्तु सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया। वैद्य गुरुदत्त का स्पष्ट मानना था कि 'समाजवाद'-जैसी विदेशी पदावली से अपने देश का विकास नहीं किया जा सकता। देश का विकास विशुद्ध भारतीय और वैदिक पदावलियों से ही सम्भव है।

वैद्य गुरुदत्त, स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त थे और आर्य समाज के पालने में पले-बढ़े लेखक-साहित्यकार थे। पिछली शताब्दी में आर्य समाज ने भारतवर्ष को एक से बढ़कर एक, निर्भीक राष्ट्रवादी विद्वान् और प्रखर लेखक दिए हैं, जिनमें स्वामी श्रद्धानन्द (1856-1926), पं. लेखराम आर्य (1858-1897), पं. गुरुदत्त विद्यार्थी (1864-1890), आचार्य रामदेव (1881-1939), पं. भगवद्दत्त (1893-1968), वैद्य गुरुदत्त, आचार्य उदयवीर शास्त्री (1894-1991), बुद्धदेव विद्यालंकार (1895-1969), जयचन्द्र विद्यालंकार (1898-19..), पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति (1901-1978), डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार (1903-1964), पं. युधिष्ठिर मीमांसक (1909-1994), राजेन्द्र सिंह (1944-2016), आदि प्रमुख हैं। ये वे साहित्यकार-इतिहासकार हैं जिन्होंने अपने लेखन के लिए यूरोपीय ग्रंथों को आधार न बनाकर विशुद्ध भारतीय स्रोतों– वैदिक और लौकिक संस्कृत-साहित्य को उपजीव्य बनाया और भारतीय इतिहासलेखन को एक नयी दिशा दी। ये वे साहित्यकार-इतिहासकार हैं जो भली-भाँति अंग्रेज़ी जानते थे, किन्तु जिन्होंने अंग्रेज़ी का प्रयोग न करने का अथवा स्वल्प प्रयोग करने का संकल्प किया था और जिन्होंने हिंदी की अमूल्य सेवा की। कहने की आवश्यकता नहीं कि शासन-पोषित समकालीन ब्रिटिश और मार्क्सवादी विद्वानों के खेमे में इन इतिहासकारों की न केवल घोर उपेक्षा हुई बल्कि इनकी किताबों को भी सरकारी खरीद से दूर रखा गया।

अपने देश में लेखन के क्षेत्र में प्रायः ऐसा देखने में आता है कि ऐतिहासिक उपन्यासकारों और साहित्यकारों को 'इतिहासकार' की कोटि में नहीं रखा जाता। वैद्य गुरुदत्त भी इनमें अपवाद नहीं थे। उन्होंने जिस विपुल परिमाण में उपन्यास लिखे, उससे उनका पेशेवर इतिहासकारवाला व्यक्तित्व नहीं उभर सका और वह केवल उपन्यासकार और साहित्यकार होकर रह गये। हमारे सामने एक ताजा उदाहरण बिहार के जाने-माने ऐतिहासिक उपन्यासकार डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद का है, जिन्होंने एक दर्जन से अधिक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं, वह स्वयं इतिहास के बहुत अच्छे जानकार और प्रवक्ता हैं, लेकिन वह 'लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार' के रूप में जाने जाते हैं, कोई उनको 'इतिहासकार' मानने को तैयार नहीं। इसके अतिरिक्त हिंदी-साहित्य की अमूल्य सेवा करने के बाद भी, शासन के विमुख जाने के कारण वैद्य गुरुदत्त को 'साहित्यकार' की श्रेणी में भी रखने से परहेज किया गया।

यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश काल में जो लेखक किसी विश्वविद्यालय में सेवारत रहे, और जिन्होंने अंग्रेज़ी में लेखन-कार्य किया, प्रायः उन्हीं को 'इतिहासकार' की कोटि में रखा गया; जिन्होंने 'स्वान्तःसुखाय' लेखन किया, उनको सिवाय उपेक्षा के कुछ नहीं मिला। डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, सर यदुनाथ सरकार, डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे, भगवतशरण उपाध्याय, डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार, राखालदास बनर्जी, ताराचन्द, रमेशचन्द्र दत्त, वी.आर. रामचन्द्र दीक्षितार, रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर, दिनेशचन्द्र सरकार, डॉ. रामशरण शर्मा, इरफ़ान हबीब, रोमिला थापर, हरवंश मुखिया, सुमित सरकार, नीहाररंजन राय– इन सभी ने किसी-न-किसी विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य किया था और इतिहास पर ही पुस्तकें लिखी

थीं। फलस्वरूप ये 'इतिहासकार' माने गये। इसके विपरीत जो विद्वान् किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नहीं रहे, किन्तु जिन्होंने इतिहास की अमूल्य सेवा की, उनको इतिहासकार ही नहीं माना गया अथवा उनके इतिहासकार होने में सन्देह खड़ा किया गया, जैसे– पुरुषोत्तम नागेश ओक, आचार्य रघुवीर, राहुल सांकृत्यायन, डॉ. देवसहाय त्रिवेद, धर्मपाल, काशीप्रसाद जायसवाल, पं. कोटावेंकटचलम्, राजेन्द्र सिंह, आदि। वैद्य गुरुदत्त की उपेक्षा का यह भी प्रमुख कारण रहा।

वैद्य गुरुदत्त के इस 125वें जन्मवर्ष पर हम उन्हें याद करें और उनके साहित्य का अध्ययन करें। उन्होंने एक आदर्श समाज का जो चित्र हमारे सामने रखा था, उसे साकार करने के उपाय करें, यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

❖❖❖

आगामी अंकों के विषय	
अक्टूबर–दिसम्बर, 2019 शिक्षा की भारतीय संकल्पना	जनवरी–मार्च, 2020 मीडिया और सभ्यतामूलक विमर्श
• भारत में शिक्षा का इतिहास • शिक्षा का औपनिवेशिक आख्यान • शिक्षा, समाज और राज्य • शिक्षा का अधिकार • शिक्षा नीति, 2019 की समीक्षा • संस्कृत और योग का शिक्षा में महत्त्व • एनसीईआरटी की प्रासंगिकता • गुरुकुल-व्यवस्था की प्रासंगिकता • भारत में ब्रह्मविद्या से इतर सामान्य शिक्षा-व्यवस्था • भारतीय शिक्षा की पुनर्प्रतिष्ठा की चुनौतियाँ	• मीडिया नैतिकता का भारतीय परिप्रेक्ष्य • संचार की भारतीय अवधारणा • भारतीय संचारक और उनकी अवधारणाएँ क) नारद मुनि ख) भरत मुनि का नाट्यशास्त्र ग) अभिनवगुप्त के संचार सिद्धान्त • सभ्यतागत संघर्ष और भारतीय मीडिया • संचार व्यवस्था और मन्दिर • सिनेमाई संचार और भारतीयता • सोशल मीडिया : प्रभाव, सीमाएँ और सावधानियाँ • संचार, शासन और लोकतंत्र • संचार-माध्यम और राष्ट्रीय भावना

पुस्तक-समीक्षा

संग्रहालय और औपनिवेशक षड्यंत्र का सच

क्या इतिहास से हमें जोड़नेवाले संग्रहालय भी किसी सभ्यतागत संघर्ष का हिस्सा हो सकते हैं? क्या संग्रहालय, औपनिवेशीकरण को मज़बूत करने या उसे समाप्त करने का साधन बन सकते हैं? यदि हमें इन प्रश्नों के उत्तर तलाशने हों, तो हमें देश के एक अत्यंत मेधावी युवा इतिहासकार डॉ. आनन्द बर्धन की पुस्तक 'कोलोनियल म्यूजियम्स, एन इनर हिस्ट्री' को अवश्य पढ़ना चाहिए। इस पुस्तक में कई स्थानों पर डॉ. आनन्द बर्धन स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि संग्रहालय एक यूरोप-केन्द्रित विचार है।[1] उन्होंने इस बात को बहुत ही स्पष्टता के साथ लिखा है कि औपनिवेशिक काल में संग्रहालयों का जो विकास देश में हुआ, वह केवल औपनिवेशिकता को ही पुष्ट करनेवाला था, उन संग्रहालयों के माध्यम से भारत को यूरोप से हीन और कमतर दिखाने का भरपूर प्रयास अंग्रेज़ों द्वारा किया गया।

सामान्यतः यह समझा जाता है कि किसी भी देश की कला, संस्कृति और इतिहास की प्रदर्शनी वहाँ के संग्रहालय होते हैं। संग्रहालय यानी एक ऐसा स्थान जहाँ उस देश अथवा स्थान के सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व के पुरातात्त्विक अवशेषों का संग्रह एकत्र हो। आम तौर पर ऐसे अवशेषों में सिक्के, पुरानी मूर्तियाँ, पुराने औज़ार तथा हथियार आदि होते हैं। भारत में वर्तमान में जो भी संग्रहालय हैं, उनका विकास प्रमुखतः यूरोपीय लोगों ने किया था और उसके पीछे उनका कुछ निहित स्वार्थ भी था। क्या हमने कभी सोचा है कि हमारी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर की प्रदर्शनी होने के बाद भी देश का आम आदमी इनसे जुड़ाव या लगाव अनुभव क्यों नहीं करता? आख़िर क्या कारण है कि किसी भी स्थान का भ्रमण करने जानेवाले लोग दर्शनीय स्थलों में संग्रहालयों को सबसे अन्तिम स्थान पर क्यों रखते हैं? इसका सबसे बड़ा कारण है कि ये संग्रहालय

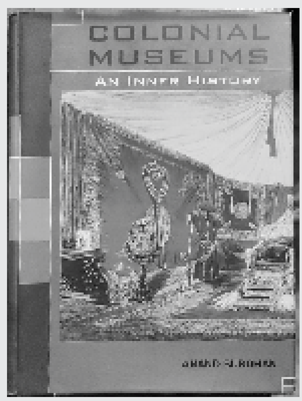

पुस्तक-नाम : कोलोनियल म्यूजियम्स, एन इनर हिस्ट्री
लेखक : आनन्द बर्धन
प्रकाशक : रिसर्च इण्डिया प्रेस, ई 6/34, संगम विहार, नयी दिल्ली;
दूरभाष : 011-26047013, 9818085794
कुल पृष्ठ : 363
मूल्य : ₹2700/-

भारत की आत्मा को अभिव्यक्त ही नहीं करते। इन संग्रहालयों को बनाने में भारतीय मानस का ध्यान रखा ही नहीं गया। डॉ. आनन्द बर्धन पहले अध्याय में ही लिखते हैं– 'औपनिवेशिक काल में संग्रहालय एक ऐतिहासिक विमर्श का स्थान थे, जहाँ औपनिवेशिक काल से पूर्व के ज्ञान और वस्तुओं को कालबाह्य वस्तुओं के रूप में देखा जाता था। कला-इतिहासलेखन का यही मुख्य सिद्धान्त रहा है और इसलिए यूरोपीय सौन्दर्यबोध को सार्वभौमिक रूप से उपनिवेशों के ऐतिहासिक कलाओं पर थोपा गया। इस काल में यूरोप-केन्द्रित संग्रहालयों में औपनिवेशिक काल से पूर्व के भारत की वैज्ञानिक ज्ञान को दर्शाने का कोई स्थान ही नहीं था।'[2] वास्तव में संग्रहालयों की स्थापना का उद्देश्य भारतीय संस्कृति और इतिहास की विशालता, महानता और प्राचीनता को बताना नहीं था, बल्कि उसे यूरोप के सामने निकृष्ट दिखलाना था। इस बात को डॉ. आनन्द बर्धन कुछ इन शब्दों में बताते हैं– 'संग्रहालयों क निर्माण यूरोपीय विद्वत्ता और विचार के अनुसन्धानात्मक प्रवृत्ति का परिणाम थे। वास्तव में, औपनिवेशिक शासन के लिए यह एक सांस्कृतिक साधन थे जिसके माध्यम से इंग्लैण्ड के समुद्रपार के साम्राज्य को एक विज्ञानविहीन क्षेत्र के रूप में दर्शाया जाता था।'[3]

'कोलोनियल म्यूजियम्स' ब्रिटिश शासन के दौरान बनाए गए सभी संग्रहालयों और प्रदर्शनियों का एक समग्र तथा समीक्षात्मक इतिहास प्रस्तुत करती है। इस क्रम में डॉ. आनन्द बर्धन ने भारतीय संस्कृति, इतिहास और कलाओं के प्रति यूरोपीय दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत किया है। उल्लेखनीय है कि पंद्रहवीं शताब्दी के अंत में वास्को-डी-गामा के भारत आने के बाद से पूरे यूरोप में भारत आने और यहाँ के धन-वैभव को पाने की होड़ लग गई थी। यूरोप के सभी देशों में ईस्ट इण्डिया कम्पनियाँ स्थापित होने लगी थीं। हम जिस ईस्ट इण्डिया कम्पनी से अधिक परिचित हैं, वह इंग्लैण्ड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी थी, परन्तु उससे पहले भारत में फ्रांसीसी, डच, पुर्तगाली, डेनिश, जर्मन आदि कई ईस्ट इण्डिया कम्पनियाँ भी काम कर रही थीं। इन सभी में काफ़ी लड़ाइयाँ हुआ करती थीं जिसमें अंततः इंग्लैण्ड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी विजेता रही।

इन सभी यूरोपीय देशों की कम्पनियों में भले ही व्यापारिक झगड़े होते रहे हों, परन्तु इन सभी देशों का भारत में एक ही काम था और वह काम था यहाँ के धन-वैभव के साथ-साथ यहाँ के ज्ञान-विज्ञान को यूरोप पहुँचाना और भारत को एक पिछड़ा, अविकसित और आदिम देश साबित करके उसके ईसाइकरण का मार्ग प्रशस्त करना। इसके लिए उन्होंने ढेर सारे प्रयास किए। इस क्रम में जो भी किले और खण्डहर आदि उनके कब्ज़े में आए, वहाँ उन्होंने सोने के सिक्के और मूल्यवान् मूर्तियों की खोज में खुदाई करनी शुरू की। प्रारम्भ में तो वे इस प्रकार की खुदाई से प्राप्त सारी सामग्री अपने देश ले जाया करते थे, परन्तु कालांतर में विद्रोह होने की आशंका प्रबल होने पर उन्होंने यहाँ संग्रहालय बनाने प्रारम्भ किये। अठारहवीं शताब्दी तक यूरोपवासियों का पेट काफ़ी कुछ भर चुका था और इसलिए उनका ध्यान अपने उपनिवेशों के लम्बे समय तक मानसिक रूप से गुलाम बनाए रखने के उपायों पर गया। इसके लिए जहाँ शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण हथियार था, वहीं उन्होंने कला और संस्कृति के स्तर पर संग्रहालयों को विकसित किया।

इस बात को स्पष्ट करते हुए डॉ. बर्धन लिखते हैं– 'भारतीय विद्वानों ने संग्रहालयों तथा

प्राकृतिक ऐतिहासिक वस्तुओं के प्रदर्शन के लिए किए जा रहे वस्तुओं के संग्रह की औपनिवेशिक राजनीति के बारे में अधिक कुछ नहीं लिखा है। जहाँ तक भारत के प्राकृतिक इतिहास में यूरोपीयों की रुचि की बात है, उनकी रुचि दुर्लभ तथा सुन्दर में नहीं, बल्कि उनकी खोज में थी, जो पृथिवी-विज्ञान के अध्ययन में सहायक हो सकें। भारत में पृथिवी-विज्ञान का अध्ययन किए जाने के पीछे आर्थिक उद्देश्य थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह भारत के प्राकृतिक संसाधनों से यूरोप को पूरी तरह परिचित कराने का एक औपनिवेशिक मिशन था। यह जानना अधिक रोचक हो सकता है कि ईसाई मिशनरियों ने इस सारे आर्थिक प्रयत्नों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया जिससे आर्थिक भूगर्भशास्त्र का एक अकादमिक विषय के रूप में विकास हुआ।[4]

वर्ष 1851 में क्रिस्टल पैलेस, लन्दन में हुई विशाल भारतीय प्रदर्शनी के बारे में बताते हुए डॉ. बर्धन लिखते हैं– 'यह प्रदर्शनी यह दिखलाने के लिए आयोजित की गई थी कि ऐतिहासिक कालक्रमबद्ध तथा विभिन्न सौन्दर्युपादानों पर चढ़ते हुए विकास करनेवाली यूरोपीय संस्कृति की तुलना में किस प्रकार भारतीय संस्कृति ऐतिहासिक विकास से शून्य रही है। सैद्धान्तिक रूप से यह गणित, चिकित्साविज्ञान, धातुकर्म, खगोलशास्त्र, स्थापत्य और कला के क्षेत्रों में अतुलनीय उपलब्धियाँ पाने के पाँच हज़ार वर्ष के गौरवपूर्ण इतिहासवाले एक औपनिवेशिक देश की सांस्कृतिक अस्मिता के एक परस्परविरोधी भाव का प्रदर्शनमात्र था।[5]

यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि यूरोपीयों ने अपना पक्ष और विपक्ष– दोनों ही खड़ा किया। पक्ष तो वे थे ही, विपक्ष के तौर पर प्राच्यविदों की एक लंबी परम्परा खड़ी की गई। डॉ. आनन्द बर्धन ने इस संघर्ष और प्राच्यविदों पर भी प्रश्न खड़े करनेवाले पॉलिनस-जैसे अप्रसिद्ध यूरोपीय यात्रियों का प्रासंगिक उल्लेख किया है। डॉ. बर्धन ने म्यूजियम शिक्षा पर औपनिवेशिक प्रभावों और विभिन्न अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा खड़े किए गए विभिन्न संग्रहालयों का विस्तृत विवेचन किया है। इसी क्रम में उन्होंने लगभग भुला दिए गए राजा सरफोजी और भाई दाजी लाड-जैसे भारतीय नामों और उनके योगदान को भी प्रमुखता से प्रस्तुत किया है।

यह पुस्तक न केवल औपनिवेशिक काल में भारत में विकसित किए गए संग्रहालयों का इतिहास प्रस्तुत करती है, बल्कि यह उनके पीछे की औपनिवेशिक मानसिकता को भी उजागर करती है और साथ ही उनकी कमियों को भी सामने लाती है। यह पुस्तक भारत के सांस्कृतिक संघर्ष को भी पर्याप्त प्रमाणों और साक्ष्यों के साथ प्रस्तुत करती है। पुस्तक में कुल 18 अध्याय हैं, जिनमें न केवल औपनिवेशिक काल में बनाए गए सभी भारतीय संग्रहालयों और प्रदर्शनियों का विस्तृत समीक्षात्मक विवरण है, बल्कि उसके समानांतर चलनेवाले भारतीय प्रयासों और उनकी घोर उपेक्षा का भी विस्तार से जानकारी दी गई है। इस पुस्तक को पढ़ने से हमें यह स्पष्ट हो सकता है कि आज के संग्रहालय भारतीय जन-मन को आख़िर क्यों नहीं छूते हैं और यदि उन्हें भारतीय मानस से जोड़ना है, तो हमें क्या करना होगा। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि यह पुस्तक केवल संग्रहालयशास्त्र के छात्रों के लिए ही नहीं, बल्कि साथ ही इतिहास के छात्रों तथा देश की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत के संरक्षण की नीतियाँ बनानेवाले शासकीय नीतिकारों के

लिए भी अवश्य पठनीय है, यो बिल्कुल भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पुस्तक हालांकि अंग्रेज़ी में है, लेकिन इसकी भाषा काफ़ी प्राञ्जल और सरल है, इसलिए अंग्रेज़ी की सामान्य जानकारी रखनेवाले लोग भी इसे थोड़े प्रयास से पढ़ सकते हैं। पुस्तक हार्डबाउंड में है और इसलिए काफ़ी महंगी है। यदि इसका साधारण पेपरबैक संस्करण भी उपलब्ध हो सके, तो अच्छा होगा। फिर भी जो इसे स्वयं नहीं खरीद सकते, वे इसे अपने पास के किसी पुस्तकालय में खरीदवाकर फिर पढ़ सकते हैं। भारतीय इतिहास के अनूठे पहलू से साक्षात्कार करने के लिए इतनी मेहनत तो करनी बनती ही है।

सन्दर्भ :

1. कोलोनियल म्यूज़ियम्स, पृ. 50
2. वही, पृ. 5
3. वही पृ. 5
4. वही, पृ. 33
5. वही, पृ. 36

■ रवि शंकर

एन.सी.ई.आर.टी.-समीक्षा

विभेद नहीं, एकात्मता से परिचय करायें

रवि शंकर

कक्षा छह से नागरिकशास्त्र का अध्यापन प्रारम्भ होता है। नागरिकशास्त्र की पहली पुस्तक का पहला अध्याय ही विभेद का है। विविधता की समझ के नाम से गठित यह अध्याय भारत में जो भेदभाव है, उसके बारे में बच्चों को जानकारी देता है। हमें यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि एनसीईआरटी के लेखक इससे पहले ही बच्चों में विभिन्न प्रकार के भेदभावों की जानकारी देते आ रहे हैं। कक्षा पाँचवीं के बच्चों को लिंगभेद, जातिभेद, सम्प्रदायभेद की जानकारी दी जा चुकी है। उसको ही यहाँ आगे बढ़ाया जा रहा है। हमें यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि विभिन्नता या विविधता और भेदभाव में अन्तर होता है। इस अंतर से पुस्तक के लेखक नितांत अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं और बच्चों को विविधता की जानकारी देने के बजाय भेदभाव की जानकारी देने का प्रयास कर रहे हैं। विविधता की जानकारी से बच्चों में सर्वसमावेशी होने का गुण विकसित होता है, जबकि भेदभाव की जानकारी देने से बच्चों में आत्महीनता, ग्लानि और ईर्ष्या का भाव विकसित होता है। इसे ठीक से समझने के लिए इस अध्याय का विस्तृत विवेचन करते हैं।

एनसीईआरटी की कक्षा छठी की नागरिकशास्त्र की पुस्तक का शीर्षक है– **सामाजिक और राजनीतिक जीवन**। यानी इसमें देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन से बच्चों को परिचित कराया जाएगा। इसका पहला अध्याय है– **अंडरस्टैंडिंग डाइवर्सिटी**, जिसे हिंदी में लिखा गया है– **विभिन्नता**। यह समझ पाना कठिन है कि विद्वान् लेखकों ने भारत के सामाजिक जीवन के बारे में पढ़ाने के लिए सबसे पहला अध्याय 'विभिन्नता' ही क्यों लिखा। क्या भारत को

देखते ही उन्हें केवल विभिन्नता ही दिखती है? या वे बच्चों के मन में सबसे पहले भारत की विभिन्नता के भाव को परिपक्क करना चाहते हैं? कारण चाहे जो भी हो, पहला ही अध्याय बच्चों को भारत के सामाजिक जीवन से नहीं, बल्कि उसकी एक विशेषता– विभिन्नता से परिचय करवाता है। यह थोड़ी हैरान करनेवाली बात है कि समाज का ज्ञान दिए बिना, उसकी विशेषताओं की चर्चा की जाए। पढ़ाने का यह तरीक़ा भी काफ़ी क्लिष्ट और कम-से-कम बच्चों के लिए पहेली जैसा ही है। यही कारण है कि बच्चे इन विषयों को पढ़ते तो हैं, पर समझते नहीं हैं।

हिंदी पुस्तक में इस अध्याय के प्रारम्भ में बताया गया है– 'यहाँ हमने सोच-समझकर विशेषण और क्रिया के स्त्रीलिंग रूप का प्रयोग किया है, जो पूरे पाठ में चलता है। शिक्षा में लड़कियों को समान स्थान और अवसर मिलें, इसके लिए कई स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। एक तरीक़ा यह भी है कि हम लिखते समय लड़कियों को सीधे सम्बोधित करें। यदि हम अभी तक की पाठ्यपुस्तकों को देखें, तो उनमें पढ़नेवाले को हमेशा एक लड़का मानकर पुल्लिंग रूपों का ही प्रयोग किया जाता है। यह मान लिया जाता है कि स्त्रीलिंग रूप उसी में शामिल है। यहाँ हमने भाषा की इस परिपाटी को बदला है। इस पाठ के अलावा हमने कुछ अन्य पाठों में भी स्त्रीलिंग रूप का प्रयोग किया है।'[1]

इस उद्धरण से पता चलता है कि पुस्तक लिखनेवाले, बच्चों को समाजशास्त्र सिखाने से अधिक, आज की राजनीति का मोहरा बनाने का काम कर रहे हैं। लड़के-लड़कियों में भेदभाव किए जाने की बात यूरोपीय राजनीतिक विमर्श का एक हिस्सा है। भारत में यूरोपीय राजनीतिक विमर्शों की नकल की जाती है और इसलिए यहाँ भी बिना सोचे-समझे लिंगभेद की राजनीति की जाती है। दुःख की बात यह है कि कक्षा छह से बच्चों को इस राजनीति का शिकार बनाने का प्रयास किया जा रहा है। शिक्षा से राजनीति प्रभावित होनी चाहिए, परन्तु इस पाठ में राजनीति ही शिक्षा को निर्देशित कर रही है। यह स्थिति पाठ में आगे भी जारी रहती है। सामान्यतः पाठ्यपुस्तकों, विशेषकर बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में समाज की वह जानकारी दी जानी चाहिए, जिससे उनमें समाज की ठीक समझ विकसित हो और वे एक ज़िम्मेदार नागरिक बन सकें। यदि लेखकों को लिंगभेद न किए जाने और स्त्रियों को विशेष महत्त्व देने की बात करनी ही थी, तो पाठ की भाषा को स्त्रीलिंग में प्रस्तुत करने के बजाय स्त्री-पात्रों को प्रमुखता से दिखाया जा सकता था। आगे की समीक्षा में इस बात को और अधिक स्पष्ट किया जायेगा। यहाँ हमें यह भी ध्यान देना चाहिए कि यह काम वे अंग्रेज़ी की पुस्तक में नहीं कर रहे हैं। यानी यूरोपीय राजनीतिक की यह नकल केवल हिंदी पुस्तक में ही है।

इस अध्याय के प्रारम्भ में बच्चों को विविधता के बजाय भिन्नता, यानी डाइवर्सिटी के बजाय डिफरेंस की जानकारी दी जा रही है। भिन्नता और विविधता में सूक्ष्म अन्तर है। विविधता एक प्रकार की विशेषता है, इसमें संघर्ष नहीं होता। भिन्नता भेद पर आधारित है और इसमें संघर्ष होने की सम्भावना काफ़ी अधिक है। विविधता को बताने के लिए भिन्नता की बात करना समझ से परे है। भिन्नता को समझाते हुए दोस्ती की बात की गई है और उसके बाद एक कहानी दी गई है। नहीं, यह कहानी रामप्रसाद बिस्मिल और अशफ़ाक उल्ला ख़ाँ की नहीं है। यह कहानी मेरठ दंगे

की है। एनसीईआरटी की सबसे बड़ी समस्या यह भी है कि इसकी हिंदी की सभी पुस्तकें अंग्रेज़ी से अनुदित हैं। इसलिए इसमें जो कहानी दी गई है, वह भी एक अंग्रेज़ी कहानी का अनुवाद है। इस कहानी के पात्र भी चुनिंदा हैं। एक पात्र ट्रैफिक सिग्नलों पर अख़बार बेचनेवाला बच्चा है। दूसरा पात्र साइकिल से चलनेवाला एक व्यक्ति है। आमतौर पर ऐसे पात्रों में अख़बार लेने के अलावा और कोई संवाद नहीं होता, परंतु इस कहानी में संवाद होता है और वह कई दिनों तक जारी रहता है। कहानी में दोनों ही पात्रों का नाम एक ही है, समीर, जबकि दोनों में से एक मुसलमान है और दूसरा हिंदू। यह हैरान करनेवाली बात है; क्योंकि ग्रामीण इलाकों में मुसलमान आमतौर पर समीर जैसा हिंदू नाम नहीं रखते। परंतु केवल बच्चों को बरगलाने के लिए ऐसी एक काल्पनिक कहानी दी गई है। फिर बताया जाता है कि मुसलमान समीर के घरवाले मेरठ के रहनेवाले हैं और दंगों के पीड़ित हैं। इस कहानी के बाद बच्चों को अमीरी और ग़रीबी के भेद की भी जानकारी दी जाती है। इसके साथ यह भी बताया जाता है कि अमीरी-ग़रीबी का अंतर विविधता नहीं है, यह ग़ैर-बराबरी है। ग़ैर-बराबरी की परिभाषा करते हुए मार्क्सवादी दृष्टिकोण बच्चों पर थोपा जाता है कि 'ग़ैर-बराबरी का मतलब है कि कुछ लोगों के पास न अवसर हैं और न ही ज़मीन या पैसे जैसे संसाधन, जो दूसरों के पास हैं। इसीलिए ग़रीबी और अमीरी विविधता का रूप नहीं हैं। यह लोगों के बीच मौजूद असमानता यानी ग़ैर-बराबरी है। जाति-व्यवस्था असमानता का एक और उदाहरण है। इस व्यवस्था में समाज को अलग-अलग समूहों में बाँटा गया। इस बँटवारे का आधार था कि लोग किस-किस तरह का काम करते हैं। लोग जिस जाति में पैदा होते थे, उसे बदल नहीं सकते थे।'[2]

पुस्तक का राजनीतिक दृष्टिकोण यहाँ और अधिक स्पष्ट हो जाता है। विविधता की जानकारी अभी ठीक से नहीं दी गई है और ग़ैर-बराबरी या असमानता की चर्चा प्रारम्भ कर दी गई है। असमानता का स्वरूप और कारण भी एकपक्षीय तरीके से बताए जा रहे हैं। उसके सभी आयामों को ठीक से नहीं बताकर केवल एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण बच्चों पर थोपा जा रहा है। इसके बाद पुस्तक फिर से विविधता पर चर्चा को प्रारंभ करती है। लोगों के अलग-अलग शौक़ और अलग-अलग आदतों के उदाहरण से विविधता को समझाने का प्रयास किया गया है। उसमें यह भी बताया जा रहा है कि हम एक ही काम को अलग-अलग तरीक़ों से करते हैं। इसके बाद इसके कारणों का विवेचन किया गया है। इस विवेचन में अनेक तथ्यात्मक त्रुटियाँ भी हैं। जैसे विविधता का कारण नये स्थानों पर बसना, नये लोगों से सम्पर्क होना और नयी बातों को सीखना आदि बताया गया है। ये कारण सही हैं, परन्तु भारत के सन्दर्भ में देखें, तो मौलिक विविधता का कारण भौगोलिक और पारिस्थितिकी-तंत्र में विविधता का होना है। पुस्तक में बताए गए कारण काफ़ी सतही और क्षणिक हैं जो कि इन मौलिक विविधताओं पर लगभग निष्प्रभावी हैं। केरल और लद्दाख के उदाहरण से विविधताओं के कारण को समझाने के बाद स्वाधीनता संग्राम में सम्पूर्ण देशवासियों की एकजुटता का उदाहरण देकर समानता को स्थापित किया गया है। अध्याय का अंत एक कम्युनिस्ट संगठन इप्टा के एक गीत से किया गया है, जिसमें केवल हिंदू-मुस्लिम संघर्ष और सद्भाव की चर्चा की गई है। इस गीत में इतने अधिक उर्दू-शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिसे समझ पाना सामान्य बच्चों के लिए काफ़ी कठिन है। यह देखना महत्त्वपूर्ण है जलियाँवाला

बाग़ की घटना को एकात्मता प्रदर्शित करने के लिए प्रस्तुत किया गया है, परंतु गीत एक बार फिर केवल हिंदू-मुसलमान पर केंद्रित है। वह गीत भी केवल एक कम्युनिस्ट संगठन द्वारा गाया जाता था, जनसामान्य द्वारा नहीं। जनसामान्य तो जलियाँवाला बाग़ की घटना के बाद 'पगड़ी संभाल जट्टां, पगड़ी संभाल ओए' गाता था। पूरे पंजाब में वह गीत लोकप्रिय हो गया था। इस गीत में गुलामी की जंजीरों को तोड़ने की बात की गई थी।

बहरहाल, भारतीय समाजशास्त्र का अध्ययन करने के लिए भारतीय समाज की जानकारी इस पुस्तक से नहीं के बराबर मिलती है। जो जानकारी मिलती है, वह न केवल एकपक्षीय है, बल्कि वह राजनीतिक चर्चा जैसी प्रतीत होती है, जो बच्चों के साथ की जानी अनुचित है। तो प्रश्न उठता है कि बच्चों को भारतीय समाजशास्त्र की कौन-सी जानकारी दी जानी चाहिए थी, जो इस पुस्तक में आई ही नहीं है।

इस अध्याय का नाम वास्तव में होना चाहिए था– 'एकात्म समाज', जिसे अंग्रेज़ी में लिखा जाता 'इंटिग्रेटेड सोसाइटी'। बालमनोविज्ञान के अनुसार बच्चों के साथ हमेशा सकारात्मक बातें ही की जानी चाहिए। नकारात्मक बातों को भी इसी ढंग से सिखाया-पढ़ाया जाना चाहिए कि उसके मन में कोई ग़लत प्रभाव न पड़े। इसलिए पाठ का नाम 'विभिन्नता की समझ' या 'अंडरस्टैण्डिंग डाइवर्सिटी' के बजाय 'एकात्म समाज' अथवा 'एकात्म बोध' रखा जाना चाहिए था। इसे अंग्रेज़ी में 'इंटिग्रेटेड सोसाइटी' अथवा 'अंडरस्टैण्डिंग इंटिग्रिटी' लिखा जा सकता है। इस क्रम में हम महात्मा गाँधी के 'हिंद स्वराज' में लिखे उद्धरण को पढ़ा सकते हैं। महात्मा गाँधी ने लिखा है, 'यह आपको अंग्रेज़ों ने सिखाया कि आप एक राष्ट्र नहीं थे और एक राष्ट्र बनने में आपको सैकड़ों वर्ष लगेंगे। यह बात बिल्कुल बेबुनियाद है। जब अंग्रेज़ हिंदुस्तान में नहीं थे, तब हम एक राष्ट्र थे, हमारे विचार एक थे, हमारा रहन-सहन एक था। तभी तो अंग्रेज़ों ने यहाँ एक-राज्य कायम किया। भेद तो हमारे बीच बाद में उन्होंने पैदा किए।

'एक राष्ट्र का यह अर्थ नहीं कि हमारे बीच कोई मतभेद नहीं था, लेकिन हमारे मुख्य लोग पैदल या बैलगाड़ी पर सफ़र करते थे, वे एक दूसरे की भाषा सीखते थे और उनके बीच कोई अन्तर नहीं था। जिन दूरदर्शी पुरुषों ने सेतुबंध रामेश्वर, जगन्नाथपुरी और हरिद्वार की यात्रा ठहराई, उनका आपकी राय में क्या ख्याल होगा? वे मूर्ख नहीं थे, यह तो आप कबूल करेंगे। वे जानते थे कि ईश्वर भजन घर बैठे भी होता है। उन्हींने हमें सिखाया कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। लेकिन उन्होंने सोचा कि कुदरत ने हिंदुस्तान को एक देश बनाया है, इसलिए इसे एक राष्ट्र होना चाहिए। इसलिए उन्होंने अलग-अलग स्थान तय करके लोगों को एकता का विचार इस तरह दिया, जैसा कि दुनिया में और कहीं नहीं दिया गया है। दो अंग्रेज़ जितने एक नहीं हैं, उतने हम हिंदुस्तानी एक थे और एक हैं। सिर्फ़ हम और आप जो खुद को सभ्य मानते हैं, उन्हीं के मन में ऐसा आभास-भ्रम पैदा हुआ कि हिंदुस्तान में हम अलग-अलग राष्ट्र हैं।'[3]

महात्मा गाँधी की इस बात को आगे बढ़ाते हुए आचार्य शंकर से लेकर ऋषि दयानन्द तक के जीवन और प्रयासों का उदाहरण देते हुए यह स्थापित किया जा सकता था कि भौगोलिक विविधता के बाद भी पूरे देश के अंतरंग में एक समान भावना का प्रवाह मिलता है। सुदूर पश्चिम के

गुजरात में विद्यमान द्वारकाधीश की पूजा सुदूर पूर्व के अरुणाचलप्रदेश आदि सातों राज्यों में होती है। यह देश की एकात्मता का ही एक प्रतीक है। इस क्रम में रहीम और रसखान के उदाहरण भी दिए जाने चाहिए कि किस प्रकार दूसरे मजहब के लोगों ने भी इस एकात्मता को स्वीकार किया और इसे संवर्धित किया।

यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही विश्व के लोग भारतीय समाजरचना की एकात्मता और संघनता के प्रशंसक रहे हैं। दो-ढाई हज़ार वर्ष पहले के मेगास्थनीज तथा प्लीनी से लेकर सौ वर्ष पहले के विल ड्युरैंट तक सभी यूरोपीय विद्वान् तथा लेखक भारतीय समाज की एकात्मता के घोर प्रशंसक रहे हैं। उन सभी ने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को भारतीय समाज की विशेषता के रूप में दर्शाया है। प्लीनी ने अपनी पुस्तक 'द नेचुरल हिस्टोरिका' में लिखा है– 'भारत के अपेक्षाकृत अधिक सभ्य प्रदेशों के लोग कई वर्गों में विभाजित हैं। इनमें से एक वर्ग खेती करता है, दूसरा वर्ग सेना के काम करता है, तीसरा वर्ग व्यापार करता है, चौथा वर्ग जोकि उनमें सबसे अधिक बुद्धिमान तथा धनवान् होता है, राज्य के काम देखता है, मंत्री तथा न्यायाधीश वगैरह बनता है। पाँचवाँ वर्ग स्वयं को पूरी तरह ज्ञान की साधना में समर्पित किए होता है, जिनका उन प्रदेशों में उतना ही सम्मान किया जाता है, जितना कि हम यहाँ रिलीजियन की करते हैं। इनके अलावा एक वर्ग और है जो अर्ध-सभ्य अवस्था में है और अथक परिश्रम करता है, उनके परिश्रम पर ही उपर्युक्त सभी वर्ग निर्भर होते हैं।'[4] प्लीनी का यह उद्धरण बताता है कि भारत के सभी वर्ग परस्पर पर निर्भर हैं। उनमें कोई संघर्ष नहीं है, विद्वेष नहीं है। किसी का किसी पर कोई अत्याचार नहीं है।' प्लीनी ने आगे जो बताया है, उससे यह भी साबित होता है कि परिश्रम में डूबा छठा वर्ग, जिसे हम शूद्र वर्ग कह सकते हैं, भी कोई अशिक्षित और अनपढ़ वर्ग नहीं था। वह भी शिक्षित तथा प्रशिक्षित वर्ग था और उसका काम किसानों, व्यापारियों, सैनिकों, ब्राह्मणों आदि को सहयोग करना था। इसका तात्पर्य यह भी है कि इनमें किसी प्रकार का कोई छुआछूत नहीं था।

देखा जाए तो वर्ण तथा उससे उपजी जाति-व्यवस्था को असमानता के रूप में प्रस्तुत करना एक यूरोपीय ईसाई मिशनरी प्रोपेगैण्डा था जिसे इस पुस्तक में यथावत् परोस दिया गया है। वर्ण और जाति-व्यवस्था कहीं से भी असमानता और भेदभाव पर आधारित नहीं थी। इसके विपरीत वेदों ने वर्णों की उत्पत्ति का जो वर्णन किया है, वह अंगांगी भाव पर आधारित है। शरीर के अंग अलग-अलग होते हैं, परंतु वे एक शरीर का हिस्सा होते हैं। उन अंगों में विविधता तो होती है, परंतु असमानता नहीं होती। पैर और मस्तिष्क में भिन्नता है, असमानता नहीं। अंगांगी भाव को समझाने के देश की एकात्मता तथा विविधता– दोनों को ही सरलता से समझाया जा सकता है।

इसलिए इस पहले अध्याय में भारत की अनुपम वर्ण तथा उससे उपजी जाति-व्यवस्था के बारे में बताया जाना चाहिए था। यहाँ यह भी बताया जा सकता था कि वर्ण-व्यवस्था एक ऐसी शाश्वत व्यवस्था है जो सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक भी है। इसे आज की व्यवस्थाओं के उदाहरण से समझाया जा सकता है। आज भी पूरी दुनिया में कर्मचारियों के चार ही वर्ग माने गए हैं। पूरी दुनिया में सभी विद्यालयों में चार ही हाउस बनाए गए, तीन या पाँच नहीं। इन

उदाहरणों के आधार पर यह बताया जाना चाहिए कि ये चार वर्ण वस्तुतः मनुष्य की चार प्रकार की प्रवृत्तियों की द्योतक हैं। इन प्रवृत्तियों को पहचानने और उसके अनुकूल विषय और भावी कार्यों के चयन से अधिक सफलता प्राप्त हो सकती है।

हालाँकि बच्चों में हमेशा सकारात्मक बातों की ही चर्चा की जानी चाहिए, नकारात्मक बातों की नहीं, फिर भी इस अध्याय में जाति-व्यवस्था में आई विकृतियों और साथ ही उसके समाधान की भी भी चर्चा की जा सकती थी। बच्चों को यह बताया जा सकता था कि किस प्रकार जातियों या विभिन्न वर्गों में काम की शुद्धता-अशुद्धता के कारण रखे जानेवाली स्वास्थ्य-सम्बन्धी सावधानियों को छुआछूत कहकर प्रचारित किया गया। उस प्रचार के कारण वे छुआछूत-सम्बन्धी नियम और अधिक कठोर होते चले गए और आज बीच के कालखण्ड में वे अपने विकृततम स्तर पर पहुँचे। आज वे विकृतियाँ समाप्त हो रही हैं, उन्हें पूरी तरह समाप्त किया जाना चाहिए।

एकात्मता को और अधिक स्पष्ट करने के लिए देश के कोने-कोने में विभिन्न नामों से मनाए जानेवाले त्योहारों– मकर संक्रान्ति, युगादि आदि की जानकारी दी जानी चाहिए। सभी भाषाओं में संस्कृत की व्याप्ति और स्वीकार्यता को रेखांकित किया जाना चाहिए। पानी को बांग्ला में 'जल' और मलयालम में 'नीरू' कहते हैं जोकि संस्कृत के ही शब्द हैं। ऐसे और भी शब्दों को ढूँढ़ने के लिए बच्चों को कहा जा सकता है।

देश की एकात्मता को और अधिक स्पष्ट करने के लिए स्वाधीनता संग्राम के उदाहरण में बंग-भंग का उदाहरण दिया जाना चाहिए, न कि जलियाँवाला बाग़ का। बंग-भंग एक मजहबी आधार पर किया जानेवाला विभाजन था, जिसे देश ने पूरी तरह अस्वीकार कर दिया था। इस आन्दोलन से ही 'वन्दे मातरम्' एक राष्ट्रीय गीत बना था, जिसे सभी समुदाय के लोग गाते थे। यहाँ यह बताया जाना चाहिए था कि अंग्रेज़ों ने देश की एकात्मता को नष्ट करने के जो प्रयास किए, उसके कारण ही 1905 में जो बंग-भंग नहीं हो सका, वह वर्ष 1947 में हो गया।

इस प्रकार इस प्रथम अध्याय की संरचना भारतीय सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रारम्भिक परिचय और उसकी विशेषताओं के वर्णन से की जानी चाहिए। इसके लिए हिंदू-मुसलमान भेदभाव के मनोरोग से मुक्त होकर केवल भारतीय दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है। इससे बच्चों को न केवल अपने समाज की एक सही जानकारी मिलेगी, बल्कि उन्हें अपने पूर्वजों पर गर्व भी होगा और वे अपनी सामाजिक व्यवस्थाओं में आई विकृतियों को दूर करने के लिए कृत्संकल्पित भी होंगे।

सन्दर्भ :

1. नागरिकशास्त्र की पुस्तक, पृ. 3
2. वही, पृ. 6
3. हिंद स्वराज, पृ. 29
4. द नेचुरल हिस्ट्री ऑफ़ प्लीनी, भाग 2, पृ. 44

❖❖❖

कालगणना : एक भारतीय दृष्टि

नयी दिल्ली-स्थित भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् में दिनांक 06 अप्रैल 2019, शनिवार को सभ्यता अध्ययन केंद्र द्वारा 'कालगणना : एक भारतीय दृष्टि' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी की अध्यक्षता महाराजा अग्रसेन विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ. नन्दकिशोर गर्ग ने की, जिसके प्रमुख वक्ता प्रसिद्ध अंतरिक्षविज्ञानी डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय तथा भारतीय वेदविज्ञान संस्थान के निदेशक डॉ. रविप्रकाश आर्य रहे। इस गोष्ठी को और भी गरिमामयी बनाने के लिए यहाँ आईसीएचआर के सदस्य सचिव डॉ. रजनीश शुक्ल तथा राजनीतिक विचारक गोपाल कृष्ण अग्रवाल विशिष्ट रूप से उपस्थित रहे। ज्ञातव्य हो कि संगोष्ठी की शुरूआत में सभ्यता अध्ययन केन्द्र के निदेशक रविशंकर ने विषय की मौलिकता और विशिष्टता पर प्रकाश डाला तथा कुछ विशेष और व्यावहारिक प्रश्नों को पटल पर रखते हुए विशेष-प्रवर्तन किया। रवि शंकर द्वारा पटल पर रखे गये प्रश्न कुछ इस प्रकार थे–

- कालगणना पर चर्चा क्यों?
- शुभ मुहूर्त कब, कैसे और क्यों– क्या इन झंझटों में पड़ना आवश्यक है?
- पञ्चांग आध्यात्मिक या वैज्ञानिक? अगर वैज्ञानिक हैं तो इनका विज्ञान से किस प्रकार का सामञ्जस्य है?
- कालगणना या काल-अवधारणा विज्ञान का विषय है या दर्शन का?

पहले प्रमुख वक्ता रविप्रकाश आर्य ने बेहद सरल तरीके से कालगणना के इतिहास और विज्ञान को समझाने का प्रयास किया। उनके तथ्यपूर्ण विश्लेषण में गजब का आकर्षण था, जिसने वहाँ उपस्थित श्रोतागणों को बांधकर रखा। उन्होंने अपने तर्कपूर्ण व्यक्तव्य में बताया कि साल 1536 ई. तक यूरोप को शून्य का ज्ञान ही नहीं था, जबकि हमारे भारतवर्ष में सबसे छोटी तथा वृहत्तर इकाई का सार्वजनिक ज्ञान था। इसीलिए हमारे मनीषियों ने दिन, सप्ताह तथा महीनों के नाम स्पष्ट रूप से प्रकृतिपरक और वैज्ञानिक आधार पर किये हैं। मसलन दिनों का आधार हमारे गृह हैं तो वहीं महीनों का मुख्य आधार चन्द्रमा है। इसी प्रकार सूर्य वर्ष का कारक है।

वक्ता ने बताया कि हमारी वैज्ञानिक तिथि-प्रणाली के ह्रास का कारण विश्वभर का पूर्वाग्रहों से ग्रसित होना है। आज हमें अपनी ही तिथि-निर्धारण कठिन लगती है, इसका सबसे बड़ा कारण है उसका व्यवहार रूप में कार्य न होना। मास-परिवर्तन का कारक चन्द्रमा को बताते हुए उन्होंने कहा कि अमावस्या के दिन चन्द्रमा और सूर्य के मध्य में जो कोण बनता है, वह शून्य कोण होता है। इस प्रकार, शून्य से मास का पुनः प्रारम्भ माना जाता है। वैसे इस पर उत्तर भारत और दक्षिण भारत में मतांतर भी हैं, परन्तु उससे हमारी तिथि-निर्धारण में कोई अंतर नहीं आता। कुछ वर्षों से मकर संक्रांति 14 जनवरी को न मनाकर 15 जनवरी को मनाई जा रही है।

डॉ. रविप्रकाश आर्य ने आगे बताया कि 72 (लगभग 71.6) वर्षों में पृथिवी अपने स्थान

से थोड़ी खिसक जाती है, जिसका प्रभाव हमारे पञ्चांग की तिथि-निर्धारण पर भी पड़ता है। आगे 72 सालों के बाद पृथिवी का यही परिवर्तन मकर संक्रान्ति को 14 जनवरी की जगह 15 जनवरी को मनाए जाने का कारक है, जो आगे 16 जनवरी भी हो जायेगा। डॉ. आर्य की मानें तो हम एक ही ढर्रे पर नहीं चलते, वरन् प्रकृति व नक्षत्रों की चालों पर परिवर्तन करते हैं। इस तरह से हमारी पद्धति यूरोप से कहीं अधिक वैज्ञानिक और श्रेष्ठ है। आंग्ल कैलेण्डर में समयानुसार सुविधानुकूल महीने जोड़े गए हैं, जबकि हमारे पास लाखों वर्षों के इतिहास का साक्ष्य उपलब्ध है। परन्तु पश्चिम के पास इसका पूर्णतया आभाव है। हमारी जीवनशैली में जन्म से लेकर मरण तक कालक्रम को व्यवस्थित और सुचारु बनाया गया है। आंग्ल कैलेण्डर को व्यक्ति-अनुकूल बनाया गया है, जो इसकी अवैज्ञानिकता को सिद्ध करता है।

इसी क्रम में उन्होंने आर्क बिशप (400 साल पहले), जूलियस सीजर, ऑगस्टस के उदहारण भी दिए कि किस प्रकार इन्होंने अपनी सुविधानुसार और अपने सत्ताधीशों के नाम के आधार पर न सिर्फ़ महीनों के नाम बल्कि दिनों के नाम का भी निर्धारण कर दिया है। मज़े की बात तो यह है कि इनका कोई तार्किक विश्लेषण भी नहीं है, जबकि भारतीय पद्धति में मास, ऋतु और प्रकृति के अनुसार इनका निर्धारण किया गया है। चन्द्रमा की गति के अनुसार पाक्षिक अर्थात् अमावस्या और पूर्णिमा जो 15 दिन की कालावधि पर पड़ता है, में चन्द्रमा और सूर्य मिलकर 180 डिग्री का कोण बनाते हैं, वही अमावस्या में दोनों शून्य हो जाते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन की व्याख्या करते हुए उन्हें कर्क और मकर रेखा का अनुपालन करना होता है। गोया कई बार मन में प्रश्न उठता है कि कभी-कभी एकादशी या पूर्णिमा या अन्य तिथियाँ दो दिनों की हो जाती हैं, तो कभी एक ही दिन में दो तिथियों का लोप हो जाता है। ऐसे में डॉ. आर्य ने इसका समाधान करते हुए बताया कि इसका कारण है हमारी तिथियों पर सूर्योदय का प्रभाव। चूँकि सूर्योदय प्रकाश को इंगित करता है। हमारे वेदों में भी इसकी विशद् चर्चा है। हमारा गायत्री मंत्र भी यही कहता है। इस प्रकार, जो तिथि सूर्योदय से सूर्यास्त के बाद हो वही मान्य होती है और सूर्यास्त के बाद की तिथियों का लोप हो जाता है। उन्होंने आगे बताया कि उत्तरी ध्रुव को सुमेरु तथा दक्षिणी ध्रुव को कुमेरु कहा गया है। वैसे भी हमारे यहाँ प्रत्येक आयोजन में तिथियों का बड़ा महत्त्व रहा है, यथा 12 वर्ष में लगनेवाला कुंभ चूँकि बृहस्पति को अपना एक चक्कर पूरा करने में 12 वर्ष का समय लगता है। यही कारण है कि इस कालावधि में स्थान विशेष पर वायुमण्डलीय प्रभाव के कारण गुणकारी अमृत बरसता है।

डॉ. आर्य के वक्तव्य के उपरांत प्रसिद्ध अंतरिक्षविज्ञानी डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय को 'महर्षि सम्मान' से अलंकृत किया गया। सम्मानित डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय ने भास्कराचार्य कृत सिद्धान्तशिरोमणि का उद्धरण करते हुए अपना वक्तव्य शुरू किया और बताया कि पृथिवी की एक लहर यानी वृत्तीय परिधि में उसका दोलन 25,771.4 साल के अंतराल में होता है। इस बारे में उन्होंने लट्टू के घूर्णन का उदाहरण देते हुए समझाया कि जिस प्रकार अगर हम लट्टू अपनी धुरी पर लहरदार घूर्णन करता है, ठीक वैसी ही गति पृथिवी की भी है। इसके साथ ही डॉ. पाण्डेय ने पृथिवी के निर्माण, उसके अंत और उसकी अनेक गतिविधियों पर विधिवत् प्रकाश डाला। काल की गणना का समय क्या हो, इस पर डॉ. पाण्डेय ने पश्चिम के वैज्ञानिकों के बिग बैंग के सिद्धान्त को नकारते हुए कहा कि ये लाज़मी है कि जिस काल में बिग बैंग की घटना घट रही थी, उसके बारे में भी पता होना चाहिए। इसके अलावा जिस पिण्ड पर यह विस्फोट हुआ उसके निर्माण का काल भी कालगणना के

अंतर्गत अध्ययन का विषय होना चाहिए और है भी, लेकिन पश्चिम के विद्वान् इससे अछूते रहे। डॉ. पाण्डेय ने कालगणना पर प्रकाश डालते हुए 43,20,000 वर्षों का एक चतुर्युग; 1000 चतुर्युगों का एक मन्वन्तर,14 मन्वन्तरों का एक कल्प तथा 6 कल्पों का एक सृष्टि चक्र बताया। उन्होंने बताया कि 6 कल्पों को भी उनके गुणों के आधार पर नामकरण किया गया है, जो इस प्रकार हैं– ब्रह्मा, लोहित, पद्म, श्वेतवाराह, पिंगल, कृष्णा। इसके अलावा उन्होंने विभिन्न मन्वन्तरों के नाम भी बताए जो स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, चाक्षुष, रैवत, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णी, धर्मसावर्णि, रूद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इंद्रसावर्णि के नाम से जाने जाते हैं। डॉ. पाण्डेय ने आगे बताया कि किस प्रकार हमारे यहाँ समय को मापने के लिए प्राकृतिक घड़ियों का निर्माण हुआ था, जिसमे सबसे ज्यादा प्रचलित दो थे। एक तो रेत के द्वारा जो अभी भी कई जगह दृष्टिगोचर हो जाते हैं, दूसरा तांबे के दो बर्तनों द्वारा समय का मापन, जिसमें पानी के माध्यम से इसमें एक बड़े आकार का बर्तन लिया जाता था, जो पानी से भरा होता था। छोटा पात्र खाली होता था, जिसमे एक छिद्र इस प्रकार किया जाता था कि उसमें बूँद-बूँद पानी जाता रहता था। इसके साथ ही उन्होंने हमारे 12 महीनों के शास्त्रीय नाम से भी लोगों का परिचय कराया, जो इस प्रकार हैं– चैत्र-मधु; वैशाख-माधव; ज्येष्ठ-शुक्र; आषाढ़-शुचि; श्रवण-नभस; भद्रा-नभस्य; आश्विन-ईश; कार्तिक-ऊर्ज; मार्गशीर्ष-सहर; पौष-सहस्य; माघ-तापस; फाल्गुन-तपस्य। डॉ. पाण्डे ने आगे संवत्सरो के विभिन्न नामों पर भी प्रकाश डाला और बताया कि इन्हें संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर एवं वत्सर के नाम से जानते हैं।

ब्रिटिश कैलेण्डर के जन्म के बारे में बताते हुए डॉ. पाण्डेय ने कहा कि आंग्ल कैलेण्डर को लेकर खुद यूरोप में एक मत नहीं है। इसका प्रादुर्भाव तो 1752 में किया गया, जिसमें पहले केवल 9 महीने ही होते थे। बाद में इसमें जूलियस सीजर ने जुलाई जोड़ दिया और ऑगस्टस ने अगस्त। वहीं1752 में किंग जॉर्ज के नाम से जनवरी बन गया। लेकिन अभी भी वहाँ की परम्परा के अनुसार लंदन में 25 मार्च को ही नववर्ष मनाया जाता है, जिसमे वो अपने मिलनेवालों को विभिन्न रंगों से भरी हुई छोटी शीशियाँ भेंट किया करते हैं। इसी क्रम में उन्होंने विश्व के विभिन्न देशों के कुछ उदहारण देकर बताया कि कहीं-न-कहीं हम एक ही सनातन संस्कृति से जुड़े हैं।

कालगणना की वैज्ञानिक अवधारणाओं पर प्रकाश डालने के बाद प्रश्नों पर चर्चाओं का दौर चला, जिसमें श्रोताओं की सम्पूर्ण शंकाओं और समस्याओं का समाधान दोनों विद्वानों ने किया।

सृष्टि का रहस्य जानते थे भारतीय

सृष्टिविज्ञान के दो पहलू हैं। पहला पहलू है कि सृष्टि क्या है? आधुनिक विज्ञान यह मानता है कि आज से 13.7 अरब वर्ष पहले बिग बैंग यानी महाविस्फोट हुआ था। उसके बाद जब भौतिकी की रचना हुई, अर्थात्, पदार्थ में लम्बाई, चौड़ाई और गोलाई आई, वहाँ से विज्ञान की शुरूआत हुई। उससे पहले क्या हुआ, इस पर विज्ञान मौन है। क्योंकि भौतिकी की यह सीमा है। क्वांटम सिद्धान्त के आधार पर अवश्य आगे का जानने के कुछ प्रयास हुए, परंतु उसमें कुछ ख़ास सफलता नहीं मिली। उससे जो कुछ निकाला गया, वह सारी बातें हमारे शास्त्रों में पहले से है। यह बात गत 28 जून 2019 को रामानुज इंस्टिट्यूट, कोकर में आयोजित कार्यक्रम में प्रसिद्ध अंतरिक्षविज्ञानी ओमप्रकाश पाण्डेय ने कहीं।

उन्होंने कहा कि आर्यभट ने सबसे पहले कहा कि पृथिवी गोल है और हमें तो बचपन में यह पढ़ाया गया था कि कपरनिकस ने सबसे पहले कहा कि पृथिवी गोल है। उसके साथ ईसाइयों ने बड़ा ही अमानवीय व्यवहार किया; क्योंकि बाइबिल के जेनेसिस के अध्याय में लिखा है कि पृथिवी चपटी है। हमारे अंदर जब कुछ जागरुकता आई तो हम कपरनिकस को छोड़ा, पीछे गए और कहा कि आर्यभट ने हमें बताया कि पृथिवी गोल है। परंतु ऋग्वेद 1.33.8 में कहा है **चक्राणासः परिणहं पृथिव्या**। यानी पृथिवी चक्र के जैसी गोल है। पृथिवी से जुड़ा जो भी विषय हम पढ़ते हैं, वह विषय है भूगोल। यह नाम ही बताता है कि पृथिवी गोल है।

उन्होंने कहा कि हम आज जानते हैं कि पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। इसके बारे में भी ऋग्वेद का एक मंत्र 10.149.1 हमें बताता है कि सविता यानी कि सूर्य एक यंत्र की भाँति पृथिवी को अपने चारों ओर घुमा रहा है। पृथिवी की गति 29.78 कि.मी. प्रति सेकेंड की गति से घूम रही है। यह अपना परिक्रमा-पथ 365 दिन छह घंटे बाईस मिनट में पूरा करती है। सूर्य पृथिवी को कैसे घुमा रहा है? यंत्र की भाँति गुरुत्व के बल से। गुरुत्व की अगर बात की जाए तो सभी को यही पढ़ाया जाता है कि गुरुत्व का सिद्धान्त आइजैक न्यूटन ने दिया। कहा जाता है कि उसने बगीचे में सेब को गिरते देखकर यह सिद्धान्त दिया। अब आप वैशेषिकदर्शन का यह सूत्र देखें– **अपां संयोगे अभावे गुरुत्वात् पतनम्**। इसका साफ़ अर्थ है कि गुरुत्व के कारण गिर जाएगा। प्रश्न उठता है कि कणाद पहले हुए कि न्यूटन? कणाद तो काफ़ी पहले हुए हैं। दूसरी बात यह है कि आज से सात वर्ष पहले लन्दन की 'टाइम्स' पत्रिका में एक ख़बर छपी थी कि न्यूटन के व्यक्तिगत पुस्तकालय में आर्यभटीय ग्रंथ मिला। इसमें आर्यभट की इस पुस्तक के उस पृष्ठ को चिह्नित किया हुआ था, जिसे संभवतः न्यूटन ने ही किया होगा, जिसमें आर्यभट के मुज़फ्फरपुर में लीची को नीचे गिरते देखने और गुरुत्व के सिद्धान्त की व्याख्या किए जाने की चर्चा है। इसका उल्लेख करके 'टाइम्स' का संवाददाता लिखता है कि सम्भव है कि न्यूटन ने आर्यभट के इस उदाहरण की चोरी कर ली हो और लीची की जगह सेब देखने की बात कह दी।

डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय ने वेदमंत्रों को उद्धृत करते हुए बताया कि भारत के ऋषियों ने सृष्टि के रहस्यों को ठीक से समझा था और उसके अनुसार जीवनचर्या बनाई थी।

उनसे पहले विषय-प्रवेश करते हुए सभ्यता अध्ययन केंद्र, दिल्ली के निदेशक और इतिहासविद् रवि शंकर ने कहा कि भारतीय ज्ञान परम्परा से युवकों को परिचित कराने के लिए ऐसे कार्यक्रम और कार्यशालाएँ आगे भी आयोजित की जाएँगी। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रसिद्ध समाजसेवी श्री ज्ञानप्रकाश जालान ने की। कार्यक्रम का संचालन योग शिक्षक अमित कुमार ने किया। कार्यक्रम में राजेश महतो, युवराज पासवान, शिव कुमार, लालू यादव, नीलम देवी, ओएनजीसी के विज्ञानी एस.एस. प्रसाद, रामानुज इंस्टिट्यूट के निदेशक सुनील कुमार, कन्हैया कुमार सहित बड़ी संख्या में प्रबुद्ध श्रोता उपस्थित थे।

■ सभ्यता अध्ययन केन्द्र प्रतिनिधि

सभ्यता-संवाद

<u>सदस्यता-प्रपत्र</u>

मेरी प्रति कुरियर ☐ रजिस्टर्ड डाक ☐ द्वारा इस पते पर प्रेषित की जाए :

नाम ....

पता..

....पिन ☐☐☐☐☐☐

दूरभाष/मोबाइल..

ई-मेल...

वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹500/- ☐   5-वर्षीय सदस्यता-शुल्क ₹2500/- ☐

संलग्न मनिऑर्डर ☐   चेक ☐   डिमाण्ड ड्राफ्ट ☐

चेक/ड्राफ्ट-क्रमांक.................... बैंक का नाम................. शाखा............दिनांक.............

चेक द्वारा ऑनलाइन भुगतान कर सकते हैं :

Centre for Civilisational Studies
Bank Name : ICICI
A/c No. 022705001874
IFSC Code : ICIC0000227

हस्ताक्षर एवं दिनांक

लेखकों से निवेदन

'सभ्यता-संवाद' एक त्रैमासिक शोध-पत्रिका है। इसमें हिंदी-भाषा में उच्च कोटि के अनुसन्धानात्मक, आलोचनात्मक तथा समीक्षात्मक शोध-निबन्ध प्रकाशित किए जाते हैं। लेख प्रेषित करने से पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

- कृपया मौलिक, अप्रकाशित, अप्रसारित निबन्ध भेजें। आपका लेख पहले से वेब पर किसी भी वेबसाइट या ब्लॉग आदि में प्रकाशित नहीं होना चाहिये। निबन्ध के शीर्षक के ऊपर 'मौलिक एवम् अप्रकाशित' अवश्य लिखें।
- 'सभ्यता-संवाद' के लिए भेजे जानेवाले निबन्ध 2,500 शब्दों से कम न हों, अधिकतम शब्द सीमा 5,000 है। 'व्यक्तित्व' स्तम्भ के लिए भेजे जानेवाला लेख 2,000 शब्दों से अधिक का न हो।
- कृपया अपने लेख में 'सन्दर्भ' अंकित करने के मानकों का पालन करें। सन्दर्भ देते समय पुस्तक/पत्रिका का नाम, लेखक/सम्पादक का नाम, प्रकाशक का नाम-स्थान, प्रकाशन-वर्ष का उल्लेख होना आवश्यक है।
- पत्रिका के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आपके लेख का शीर्षक बदलने, वाक्यांशों, अनुच्छेदों में परिवर्तन करने अथवा इसमें सम्पादन करने का अधिकार सम्पादक-मण्डल के पास है।
- आपके शोध-निबन्ध को पत्रिका में प्रकाशित करने या न करने के बारे में अन्तिम निर्णय सम्पादक-मण्डल का ही होगा। स्वीकृत रचनाओं के प्रकाशन में एक से तीन अंकों तक का समय लग सकता है। अस्वीकृत रचनाओं के विषय में पत्र-व्यवहार नहीं किया जाता।
- कृपया अपना निबन्ध यथासम्भवव टंकित करके अथवा सुपाठ्य अक्षरों में हस्तलिखित शोधपत्र **रवि शंकर, सम्पादक, सभ्यता-संवाद, बी 14, गली-नं. 13, वजीराबाद गाँव,** दिल्ली-110084 पते पर प्रेषित करें। सॉफ़्ट कॉपी sabhyatasamvad@gmail.com पर ई-मेल अवश्य करें। सॉफ़्ट कॉपी में लेख 'मंगल' अथवा 'कृतिदेव 010' फॉण्ट में टाइप किया हुआ होना चाहिए।
- कहानी, लघुकथा, कविताएँ, प्रहसन, प्रेरक-प्रसंग, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, आत्मकथा, डायरी, आलोचना, यात्रा-वृत्तान्त न भेजें।
- 'पुस्तक-समीक्षा' के लिए पुस्तक की 2 प्रतियाँ भेजना अनिवार्य है। पुस्तक की समीक्षा, पत्रिका द्वारा अपने स्तर पर करवाकर प्रकाशित की जायेगी, अतः समीक्षा साथ न भेजें। पुस्तक-समीक्षा के लिए पत्रिका के अगले दो अंकों से पूर्व पत्र-व्यवहार न करें।
- प्रथम बार लेख भेजनेवाले लेखक कृपया अपना पूरा परिचय एवं चित्र भी संलग्न करें।

वर्ष 1 ▪ अंक 3 ▪ आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद, 5121 कलि. ▪ जुलाई-अगस्त-सितम्बर, 2019

सभ्यता अध्ययन केन्द्र

Centre for Civilisational Studies

बी 14, गली-नं. 13, वजीराबाद गाँव, दिल्ली-110084
दूरभाष : 9899588033, 9654669293
sabhyatasamvad@gmail.com www.civilisationalstudies.org
facebook.com/civilisationalstudies